रुक्मिनि द्वारका गुप्त निमन्त्रन पठाया
द्वारकाधिस कृष्ण भी विदर्भ आया॥ १३१

गौरी पुजन गई तब कृष्ण रुक्मिनि हर लिया
रुक्मि जरासन्ध आदि मित्र सहित पीछा किया १३२

सैन संहार सब नृपन को हरा दिया।
सब आगे रुक्मि रथ में बांध छोड़ दिया १३३

द्वारका आ रुक्मिनि से विधिवत ब्याह किया
सत्राजित स्यमन्तक मणि चोरी दोष लगाया १३४

मणि खोजने प्रभु जाम्बवान गुफा गया।
अठाइस दिन युद्ध बाद पहचान पाया॥ १३५

स्तुति कर स्वसुता जाम्बवन्ति मणि प्रभु को अर्पित किया
प्रभु से मणि पा सत्राजित सत्यभामा अर्पित किया॥ १३६

कालिन्दी ने घोर तप कर प्रभु को वरा।
मित्रविन्दा, सत्या, भद्रा, लक्ष्मणा को ब्याहा।। १३७

मुरारि चक्र से मुर, भौमासुर के सिर काट दिया
सोलह सहस्र एक सौ बन्दि राजकन्याएँ मुक्त किया १३८

इन्होंने प्रभु को वरना इच्छा प्रकट किया।
द्वारका में सबको भिन्न भिन्न भवन दिया।। १३९

भिन्न भिन्न मण्डप भिन्न भिन्न ध्वजा।
एक हि समय सबसे ब्याह किया।। १४०

सोलह सहस्र एक सौ आठ रानी थी।
हर रानी दस पुत्र एक कन्या को जन्म दी।। १४१

प्रभु गृहस्थता देखने नारद आये।
एक ही समय हर रानी के महल में।। १४२

मित्र मित्रु धर्माचरण करते प्रभु को भाये।
सम्मानित हो प्रभु प्रभाव सुमरते गाये ९४३

बलि सुत बाणासुर सुता ऊषा सपने में।
आसक्त हुई कृष्ण पौत्र अनिरुद्ध प्रेम में।। ९४४

सोये हुए को नभ पथ हर मँगवाया।
गुप्त रूप उसके साथ बहु समय बिताया ९४५

सम्वाद पा बाणासुर नागपाश बाँधा।
नारद से सम्वाद पा कृष्ण नगर घेरा।। ९४६

भक्त पक्ष ले पुत्रों गणों सह शम्भु युद्ध आये
हर मोहित कर हरि असुर सेन संघारे।। ९४७

चक्र बानासुर सहस्र भुज काटा
शिव विनय पर चार भुज छोड़ा ९४८

पौण्ड्रक स्वयं को कृष्ण प्रचार किया
हरि निमन्त्रण पर चक्र सिर काट्यो १४८

जरासन्ध को भीम से मरवा ।
बीस हजार बन्दि नृप मुक्त कियौ ।। १५०

युधिष्ठिर जग्य में कृष्ण प्रथम पूजित हुए ।
तब सिसुपाल बहुत अपशब्द कहा । १५१
~~चक्र से सिर काट जोति~~

चक्र से सिर काट जोति प्रभु में गयी
तिन जन्म सत्रु भाव स्मरण सद्गति दी १५२

चक्र मायावी साल्व सिर काटौ
बिप्र के दोनों मृत पुत्र ला दिया १५३

बसन रूप धार द्रुपदि लाज बचायो।
हर विपत्ति पाण्डवों की रक्षा कियो।। १५४

महाभारत रचाय अर्जुन सारथि बने।
द्रुपदि प्रतिज्ञा तज भीष्म की प्रतिज्ञा रखे।। १५५

मित्र दरिद्र विप्र सुदामा द्वारका आया।
द्वारकाधिश आंसो बढ गले लगाया।। १५६

चिथड़े बन्धे चुड़े चिवड़ खा गये।
उसे अनन्त सम्पत्ति शाली किये।। १५७

मुनियों से उद्दण्ड यादवों ने ठट्ठा किया
मुनि साप से परस्पर लड़ कुल नाश किया १५८

बलराम समुद्र तट योग कर तन छोड़ा।
मृग सदृश व्याध बाण से हरि चरन बेधा। १५९

अधर्म नाश हो धर्म स्थापित हुआ था।
लीला बिहारि, नर लीला हेत कियो ॥ १६०

~~कर~~

करुणावत करत मति अधम हरिदास यह चरित लिख्यो
प्रकाशित दयाल प्रभु दयाकर इसका अपना लिखो ॥ १६१

श्री कृष्ण गोविन्द हरे मुरारे।
हे नाथ नारायण वासुदेव ॥

अच्युतं केशवं राम नारायणं।
कृष्ण दामोदरं वासुदेवं हरि ॥

हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे
हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ॥
(बृहन्नारदीय पु. ३८।१२६)

कृपासिंधु की अद्वितीय कृपाएं

3/12/82

जय जय जय कृपासिंधु कृपाल प्रभु तुम कितने हो
जुग जुग जन पर, अद्वितीय कृपा करते आये हो

पद परस आस, निर्जन बन पाषाण बनि अहल्या को
~~जा पद परस सजीव बना पति लोक पठा तारे हो।।~~
जा पद से परस, सजीव कर, पति लोक पठा तारे हो।।

गंगातट पद पखराय, हरि ले केवट हठ राखे हो
पादोदक पिला, परिवार पितरन को तारे हो।।

उर उमड़ि करुना, जब जटायु कटे पंख देखे हो।
उठा गोद, कर स्वकर पितु सम क्रिया उसे तारे हो।।

सिय हरन कराने, कपट मृग तन धारे मारीच को।
सर धर, पादेश घाय, हत, अन्त समय दर्स आस पूरे हो।

~~कुटि आये प्रभु~~

कुटि आये प्रभु अर्पन हेतु, चखन, चुन रखे बेरन को।
भखानि बरनानि, मिलनि जुठन खा, कामना पुरे हो॥

ठुकरा नृप दुर्योधन निमन्त्रन, तज मेवा मिष्ठान्न को।
दौरे जा विदुरानी घर ~~जा~~, कदलि छिलके खाये हो

पाडव पात्र लगा पत्ता ~~खा~~ छुआ, साप से बचाये हो।
द्रुपदि आर्त पुकार सुन, बसन बन लाज बचाये हो॥

रन भूमि सारथि बन, अर्जुन रथ डोर संभारे हो।
भीष्म प्रतिज्ञा राखन, चक्र उठा, स्व प्रतिज्ञा तोड़े हो।

कालिया नाग सिर ~~नाथ~~ नाच, जमुन जल पेय किये हो।
पद चिन्ह सीस पर अंकित कर, उस को धन्य किये हो

अंगराग पा प्रसन्न हो, कुबड़ हर, सुन्दरि किये हो।
उधव संग कुब्जा भवन पधार कृतारथ किये हो।

द्वारकाधीश दरिद्र सुदामा गले लगायो हो।
चिथड़े बन्धे चुड़े दिएन, रमा, धनका सम्पति बक्से हो॥

कलि में, साँवल सेठ, नरसी हुंडी सिकारे हो।
नानि बाई भात भर, क्याही चरपत राखे हो॥

ले जाने राणा के विप्र दूत, जब ध्रुवसन कर दियो
ससरीर मीरा को, रणछोड़ मुख में समालियो॥

प्रभुजी जस लागि, धन होवैं कृपा करते आये हो
अब ज दास 'शंकर' बेर, स्वभाव क्यों बिसारे हो॥

सं. नं. 45

7/12/82

सावधान

किसी भी कार्य की सफलता के लिये, चाहे वह कार्य दुनियाँ का हो या पारमार्थिक का, युक्ति सहित सावधानी रखने की बड़ी आवश्यकता है। मन हमारी इन्द्रियों का संचालक है यदि मन कहीं अन्यत्र लगा हुआ है तो आँखें देखते हुए भी नहीं देखतीं, कान सुनते हुए भी नहीं सुनते। जायका चाहते कोई स्वाद अनुभव किया का अनुभव ही नहीं कर पाती। अर्थात मन के बिना कुछ भी परिणाम नहीं। अतः एकाग्रता आवश्यक है।

मन को संयत करने के इस महत्व को तुलसीदास जी ने रामचरितमानस में सावधान शब्द का प्रयोग विभिन्न स्थलों में करके समझाया है।

(१) सृष्टिकर्ता ब्रह्मा जी —
किसका ही धैर्य मति (मन ही) एकाग्र न
तो इसके लिये शीघ्र प्रवृत्त(?) हो
जाती है। अब देवतागणों के साथ
गौ तनु धारी पृथ्वी सृष्टिकर्ता
ब्रह्मा जी के पास जाती है तब
प्रभु की स्तुति करते समय
उनको भी धैर्य मति को भी
एकाग्र चित्त भांति सावधान होने
की आवश्यकता पड़ती है
"अस्तुति करत जोरि कर सावधान
मतिधीर।" (१-१८५)
(२) श्री राम — श्री राम जी की
महिमा समझाते समय राघवेन्द्र
सरकार भी कागभुसुण्डी जी
को जैसे इन वचनों में मन को भी
सावधान (एकाग्रचित्त) हो
कर सुनने का उपदेश देते हैं
"श्रुति सिद्धान्त कहहु नीति उर
सावधान सुनु काग" (७-८६)
सत्कारि को सावधान हो कर अच्छी भांति समझने को कहते हैं।
"सावधान सुनु धरु मन माहीं" (३-३५)

भारत को संस्कृति के प्रति बताते हुए श्रोता सावधानी
और एक प्रश्न करते हैं सावधान मानस सिद्ध होगा।
(3-45)

③ भगवान शंकर – राम कथा के
रसिक वक्ता, और श्रोता एवं
स्वरूप है मानस सरोवर में राम
कथा को संजोकर रखने वाले
भगवान शंकर ने जगदम्बा
पार्वती जी को श्री राम कथा सुनाने
का अनुरोध स्वीकार कर लिया है भगवान
शंकर ने सावधान और एकाग्रचित
होकर सुनने का उपदेश देते
"सावधान सुनु सुमति भवानी"
(1-123)
यहाँ नहीं कथा सुनाते सुनाते
जब स्वरूप में अंशावतार पवनसुत
को रघुनंदन स्वीकार उठाना
चाहते हैं पर पवनसुत उठ नहीं
रहे हैं, और उनके शीश पर
श्रीराम, अपना कर कमल रखते
हैं इस प्रसंग का वर्णन करते
समय भगवान शंकर भावावेश
में प्रेम मग्न हो सुध बुध

* (४) ठाकुर जी कथा सुनाते-सुनाते प्रभु जी कहते हैं।
"सुनहु सो सावधान हरिजाना" (६-६८)
"चित्रकूट में रघुवर की प्रजा 'सावधान सब ही सनमानी सहित'" (२-२६५) (१५२१)
"सावधान सोइ सुनु विहंगमा" (७-१२५)

ही बैठते हैं तब कथा को सुचारु रूप से प्रारंभ चलाने के लिये उन्हें भी अपने मन को सावधान करना पड़ता है सो यत्न करना पड़ता है तब कहीं कथा का प्रवाह चलता है
"सावधान मन करि पुनि संकर"
(१-३३)

(५) इसी श्रेष्ठ महाराज जनक जी अपनी रानी सुनयना जी को भरत लाल की महिमा सुनाते समय सावधान यानि एकाग्र चित्त होकर सुनने का उपदेश देते हैं
"सावधान सुनु सुमुखि सुलोचनि"
(२-२८८)

* (६) युद्ध क्षेत्र में श्रीराम की धनुष टंकार सुनकर जब रावण व्याकुल होकर बेचैन हो बैठते हैं तब प्रभु के प्रताप बल को स्मरण कर, स्वयं को सावधान यानि मन को संयत करके एकाग्र

(1522)

करनी पड़ रहा हूँ ताकि युद्ध में विजय
पा सकें
"सावधान होइ धाइ जाहि खल
अप्रयासि" (3-45)
इहलौकिक कार्यों की सफलता
के लिये तो स्वाभाविक मन अभ्यास से
एकाग्र हो जाता है जैसा कि उपर्युक्त
युद्ध प्रसंग में युसफ का हुआ किन्तु कलि
के दूषित वातावरण वाले हम जैसे सांसारिक
मनुष्यों को शब्द स्पर्श विषयों को
भुगा रहे हैं व्यक्ति वायु से भी तीव्र
गति से भटकता रहता है अतः
भगवत सम्बन्धी कार्यों के लिये तो
इस मन को संयत करके एकाग्र
करना अत्यन्त दुष्कर
कार्य है पर उतना ही आवश्यक
भी। अतः सतत प्रयत्नशील रहना
है सफलता प्रभु के हाथ है।

श्रीराम जय राम जय जय राम

संले. नं. - 46 (1523)

9/12/82 श्री राम और रावण (एक विवेचन)

प्रस्तुत विवेचन दो खंडों में किया जा रहा है - प्रथम खंड प्राकृत राजा के दृष्टि कोण से दूसरा खण्ड जनता एवं व्यक्ति के दृष्टिकोण से है।

प्रथम खंड

तुलसीदास जी अपने समकालीन मुगल बादशाहों के अत्याचार से त्रस्त जनता के सम्मुख दो विपरीत प्रकृति वाले राजाओं का नमूना रखकर राजाओं को भी सही रास्ता बताया है प्रजा पालन का / और राजनीति की मर्यादा। प्रजा के पर्यायवाची शब्द नृप = नृ + प नृ यानि नर मनुष्य पं यानि पालन अर्थात प्रजा का पालन करने वाला। नरेश = नर + ईश - जिस तरह ईश्वर समदर्शी होता है उसी तरह प्रजा के प्रति समदर्शी होना चाहिये और ईश्वर की तरह प्रजा के प्रेम भाव रखना।

चाहिये (3) शासक – जो केवल शासन ही करे यानि कठोरता लो है किन्तु कमजोर पालक नहीं, स्वार्थमय प्रेरित निरंकुश हो।

नाम – नाम ही बताता है दोनों की विपरीतता – नामकरण के समय वसिष्ठजी शत्रुहन नाम रखने का कारण बताते हुए कहते हैं

"सो सुखधाम राम अस नामा। अखिल लोक दायक बिश्रामा" (१-१९६)

यानि समस्त लोकों को सुख शान्ति देने वाला त्रिकालज्ञ महर्षि के वचन हैं ये।

रावण – 'रावयतीति रावणः' यानि सब को रुलानेवाला। दशशीश – यह संसार भर को मृत्यु रूप होगा। (वा.पी. वा. २ पृष्ठ 1658–167)। ऋषि पुलस्त्य के ब्राह्मण कुल में उत्पन्न होते हुए भी विप्र स्वभाव के सर्वथा विपरीत क्रूरतापूर्ण समाज विरोधी उत्पीड़क तत्व है।

<u>प्रजा पालन</u> — श्री राम चित्रकूट से विदा करने के पहले भरत को राजधर्म का उपदेश देते हैं

"देसु कोसु परिजन परिवारू। गुर पद रजहिं लाग छरुभारू॥
तुम्ह मुनि मातु सचिव सिख मानी। पालेहु पुहुमि प्रजा रजधानी॥
मुखिआ मुखु सो चाहिऐ खान पान कहुँ एक।
पालइ पोषइ सकल अँग तुलसी सहित बिबेक॥ (2-315)

यह उपदेश आदर्श राजा का कितना सुन्दर स्पष्टीकरण है। इधर रावण ऋषियों तक से कर वसूलवाता था, कर देने के लिये पास कुछ न होने के कारण निश्चय पूर्वक उनका रक्त ही मंगवा मंगवा कर इकट्ठा करता चला गया। उसके दुर्भाग्यवश उसी रुधिर रक्त भरे घड़े से सीता जन्म लेती है जो उसके कुल-नाश का कारण बनती है।

आचरण — श्रीराम एकपत्नि व्रत हैं

"मोहि अतिसय प्रतीति मन केरी। जेहिं सपनेहुँ परनारि न हेरी। (1-231)

इसके विपरीत रावण लम्पट परनारि चोर है

"परतिय-चोर कुमारग गामी। खल मल रासि मंदमति कामी (6-33)

देव जच्छ गंधर्ब नर किंनर नाग कुमारि।
जीति बरीं निज बाहुबल बहु सुंदर बर नारि॥" (1-182)

1526

भ्रातृप्रेम – श्रीराम भरत के लिये राज्य छोड़ कर १४ वर्ष वनवासी जीवन बिताते हैं और वनवास अवधि के बाद भरत को देखने के लिए व्याकुल हो ~~आतुर~~ अतिशीघ्र विमान द्वारा अयोध्या लौटते हैं। और लक्ष्मण के शक्ति बाण लगने पर पवन सुत के बूटी लाने में देर होती देख बिलखते हैं। इसके विपरीत रावण अपने भाई कुबेर पर चढ़ाई कर पुष्पकविमान छीन लाता है और विभीषण को लात मारता है।

धर्म – किशोरावस्था में ही राम रावण के अनुचरों से युद्ध कर विश्वामित्र जी के यज्ञ की रक्षा करते हैं। यहीं अपने १४ वर्ष के वनवास की अवधि में तेरह वर्षों तक ऋषि मुनियों के आश्रमों में जा जाकर उनकी रक्षा करते हैं और उन्हें ढाढ़स बंधाते हैं:-

"निसिचर हीन करउँ महि भुज उठाइ पन कीन्ह।
सकल मुनिन्ह के आश्रमन्हि जाइ जाइ सुख दीन्ह॥"
प्रात कहा मुनि सन रघुराई। निर्भय जग्य करहु तुम्ह जाई॥
होम करन लागे मुनि झारी। आपु रहे मख की रखवारी॥

इसके विपरीत रावण अपने अनुचरों को छोड़ देता है

"सुनहु सकल रजनीचर जूथा। हमरे बैरी बिबुध बरूथा।।
तेन्ह कर मरन एक बिधि होई। कहउँ बुझाइ सुनहु अब सोई।।
द्विज भोजन मख होम सराधा।। सब कै जाइ करहु तुम्ह बाधा।।
(१-१८२)
"करहिं उपद्रव असुर निकाया। नाना रूप धरहिं करि माया।।
जेहिं बिधि होइ धर्म निर्मूला। सो सब करहिं बेद प्रतिकूला।
जेहिं जेहिं देस धेनु द्विज पावहिं। नगर गाउँ पुर आगि लगावहिं।।
(१-१८३)

राजनीति – भेद नीति तो दोनों ने ही अपनायी है। श्री राम तो कुम्भपुर्ण वर्तमान का सुग्रीव और विभीषण को अपना सखा बनाते हैं और रावण अंगद पर भेद नीति चलाता तो है पर असफल होता है

"सुनु सठ भेद होइ मन ताकें। श्री रघुबीर हृदय नहिं जाकें।।
(६-२१)

कारण यद्यपि श्री राम ने अंगद के पिता को मारा था किन्तु अंगद को युवराज बनाया और रावण के पास अपना दूत बना कर निज का विश्वास प्रकट किया एवं सम्मान दिया

"स्वयं सिद्ध सब काज नाथ मोहि आदरु दियउ।" (६-१७)

पर राष्ट्र नीति – राज्य विस्तार तो दोनों ही करते हैं दोनों ही सारे विश्व के राजा हैं "श्री राम"

"भूमि सप्त सागर मेखला। एक भूप रघुपति कोसला।।"
(७-२२)

और राक्षस राज रावण

(1528)

"भुजबल बिस्व बस्य करि राखेसि कोउ न सुतंत्र। मंडलीक मनि रावन राज करइ निज मंत्र॥" (१-१८२ख)
पर भेद है दोनों की पर राष्ट्र नीति में। श्री राम देशों को जीत कर वहीं के राजघरानों को सौंप देते हैं किष्किन्धा का राज्य सुग्रीव को युवराज पद अंगद को एवं लंका विभीषण को (ठीक जैसे इन्दिरा गांधी ने बंगला के मामले में किया) यहां तक कि रावण के मरने के बाद भी अतिथि थे उनको अपने अपने राज्यों में भेज दिया गया है नहीं युवराज अंगद को तो उसकी इच्छा के विरुद्ध जबरदस्ती भेजा। इसके विपरीत रावण हारे हुए देव राजाओं तक को पैरोल (PAROLE) पर छोड़ता है यानि नित्य आकर हाजरी देनी पड़ती है, किसी को बन्दी भी करता है नीच सेवाएं तक भी कराता है यानि सब भांति जलील करता रहता है

"कर जोरें सुर दिसिप बिनीता। भृकुटि बिलोकत सकल सभीता॥" (५-२०)
" दिगपालन्ह मैं नीर भरावा।" (६-२९)
"प्रायसु करहिं सकल भयभीता। नवहिं आइ नित चरन बिनीता॥" (१-१८२)

मंत्रणा — श्रीराम अपने सलाहकारों की सलाह मानते हैं, उन्हें वह आदर करते हैं और जब जाम्बवन्त ने जो सलाह दी उन्होंने तदनुसार ही काम किया है। यही नहीं कि रिपु के भाई विभीषण की अपने दोनों भुजाओं में भरकर प्रभु से प्रार्थना तक करते हैं यद्यपि सम्भव है कि इससे अपना लाभ कुछ नहीं और रावण के अनुमान को समझाते सम्मत एक ही है "ऐसेहिं करब धरहु मन धीरा" (५-४८) परिणाम होता है इसका मान मिलने से विभीषण गुप्त से गुप्त भेद बतला कर मेघनाद और रावण का वध कराने वाला है "मेघनाद मख करइ अपावन।
जौं प्रभु सिद्ध होइ सो पाइहि। नाथ बेगि पुनि जीति न जाइहि॥"
"जाग करइ रावन हक जागा। सिद्ध भएँ नहिं मरिहि अभागा॥"
"नाभिकुंड पियूष बस याकें। नाथ जिअत रावनु बल ताकें॥" (६-१०२)
देखा जाय तो रावण पर विजय में विभीषण को बहुत श्रेय है। इसके विपरीत किसी की नहीं मानता स्वेच्छाचारी है। मारीच, मन्दोदरी, अपने पुत्र प्रहस्त आदि की सलाह नहीं मानता। सही हितकारी सलाह देने के अपराध में अनुज विभीषण

(1530)

को लात मारता है, बूढ़े नाना माल्यवंत का तिरस्कार करता है, अपने दूत शुक को लात मारता है।

<u>गुप्त योजना</u> – दोनों ही स्थान अपने महत्वपूर्ण भावी कार्यक्रम अति गुप्त रखते हैं एकान्त में सिर्फ उसी को बताते हैं जिसको उससे काम करना है* (श्रीराम लखनलाल की अनुपस्थिति में सीता को बतलाते लीला... कि यह भेद (रहस्य) लखन लाल भी नहीं जाने

सुनहु प्रिया ब्रत रुचिर सुसीला। मैं कछु करबि ललित नरलीला॥
जबहिं राम सब कहा बखानी। प्रभु पद धरि हियँ अनल समानी॥
लछिमनहूँ यह मरमु न जाना। जो कछु चरित रचा भगवाना॥ (3-24)

* और वह भी ऐन मौके पर कि जब तत्काल कार्य प्रारम्भ करना है।

<u>रावण</u> मारीच के आश्रम पर अकेला ही यान पर चढ़ कर जाता है

"चला अकेल जान चढ़ि तहवाँ। बस मारीच सिंधु तट जहवाँ॥ (3-23)
दसमुख सकल कथा तेहि आगें। कही सहित अभिमान अभागें॥ (3-24)

* श्री रामगीता में यहाँ तक बताते हैं कि <u>रावण</u> <u>भिक्षु का रूप धारण करके अकेला गया</u> (अध्यात्म रा. 3 सर्ग 7 श्लोक 2-3)

प्रेम और कृतज्ञता / भय और भर्त्सना

श्री राम प्रभु के योद्धा प्रेम के वशीभूत होकर अपनी रक्त पानी तक जुटाते हुए प्राणों की आहुति देते जाते हैं। युद्ध समाप्त होने पर जब अपनी कृतज्ञता दर्शाते हैं तब प्रेम मग्न हो जाते हैं, प्रभु से दूर जाने तक की इच्छा नहीं है। इसका वर्णन लंका कांड दोहा ११८ में ... इच्छा से स्थ देखते ही बनता है। अयोध्या में गुरु वसिष्ठ एवं सारे समाज के सम्मुख विभीषण, सुग्रीव, नल, नील जाम्बवान, अंगद, पवनसुत आदि साथ आये हुए वीरों के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकाशित करते हैं

"गुरु की कृपाँ दनुज रन मारे।
ए सब सखा सुनहु मुनि मेरे। भए समर सागर कहँ बेरे।।
मम हित लागि जन्म इन्ह हारे। भरतहु ते मोहि अधिक पिआरे"

इसके विपरीत रावण सब की भर्त्सना करता रहता है और हमेशा मृत्यु का भय दिखाता है।

"सुनत जरा दीन्हिसि बहु गारी। गुरु जिमि मूढ़ करसि मम बोधा (3-26)
औ रन बिमुख सुना मैं काना। सो मैं हतब कराल कृपाना।। (6-40)
"करि प्रभुत्व कहि जाहि अभागे। बूढ़ भएसि न त मरतेउँ तोही।। (6-42)
"रंजुग बिमुख भएँ न भलाई।।" (6-76)

(1532)

प्रजा — राजा के आचरणों का अनुकरण प्रजा किया करती है। कहावत है जैसा राजा तैसी प्रजा। श्री राम के आचरण का प्रभाव किस तरह प्रजा पर पड़ा है इसका विस्तृत वर्णन उत्तरकाण्ड में निम्न प्रकार है:-

प्रजा पर — "बयरु न .... से सोगा। (दोहा २०)

"दैहिक .... से ..... नाहीं। (दोहा २१)

"सब उदार ..... से ..... कृतग्य (दोहा २१)

पशु, खग, मृग, सरिता पर्वत वन सागर — दोहा २३

इसके विपरीत रावण का प्रभाव उसकी प्रजा पर पड़ता है

"जेहिं बिधि ...... से ...... करहिं क्रिति" (१-१८३)

"बाढ़े खल बहु चोर जुआरा। जे लंपट परधन परदारा॥
मानहिं मातु पिता नहिं देवा। साधुन्ह सन करवावहिं सेवा॥
(१-१८३)

मनुष्य के जीवन में सुर असुर संग्राम तो चलता ही रहता है। हृदय में जब सतोगुण की प्रधानता रहती है तब सात्विक अर्थात दैविक भावना रहती है। जब तमोगुण प्रधान हो जाता है तो तामसिक अर्थात आसुरी प्रवृत्ति हो जाती। दोनों में उठा पटक तो चलती ही रहती है। कल्याण मार्गी सतोगुण को प्रोत्साहन देते हैं।

मानस के आधार उपदेश लौकिक
विवेचन के पद्धति से सुन्दर मैं गुण गाता कि
रावण पितृ-भक्त था उसने अपने और
अपने कुल को मुक्ति कराने हेतु सीता हरण
एवं श्री राम से युद्ध किया और अपने
उद्देश्य में सफलता भी प्राप्त की। इसके
आचरण से केवल यही शिक्षा निकाली जा
सकती है कि भगवत प्राप्ति और अंत-
सुधार के लिये प्राण, शरीर एवं परिवार का
मोह छोड़ कर दृढ़ता पूर्वक भक्ति में जुटे रहना चाहिये
उसको और उसके कुल को मुक्ति मिलना किन्तु
यह तो व्यक्तिगत विषय हुआ समाज को उपदेश
क्या आती जाती।

"पर पीड़ा सम नहिं अधमाई" (7-41) की कसौटी
पर कसने से तो रावण अपने बाहरी आचरण
के कारण दुर्दान्त अधर्मी ही ठहरता है
उसका अनुकरण करने से तो समाज गर्त में
ही जायेगा। धर्म की परिभाषा तो है जिसे
धारण कर सब सुखी रह सकें इसके
विपरीत अधर्म से सब दुखी रहते हैं।

(1534)

अपनी बहन के मुख से सुन भी चुका है
"अवध नृपति दसरथ के जाए। पुरुष सिंघ बन खेलन आए।
समुझि परी मोहि उन्ह कै करनी। रहित निसाचर करिहहिं धरनी॥
एक दसानन सुनि लगे पुकारा। धरन भार सकल कर उद्धारा॥"
सोच बिवश रात को नींद हराम है और विचार होता है कि 3-23
"खर दूषन मोहि सम बलवंता। तिन्हहि को मारइ बिनु भगवंता॥
तौ मैं जाइ बैरु हठि करऊँ। प्रभु सर प्रान तजें भव तरऊँ॥
होइहि भजनु न तामस देहा। मन क्रम बचन मंत्र दृढ़ एहा॥" 3-23
निश्चय कर चुका है अपनी मुक्ति का उपाय। इतना ही नहीं है उसने अपने सारे राक्षस कुल के उद्धार की भी निश्चय कर चुका है वह, यह भी निश्चय कर चुका है विभीषण को राम दल में पहुंचाना कारण सूर्पनखा नाक कटा अपमान है यह भेद वही बता सकेगा गाथा राम को और उसकी मृत्यु के बाद लंका का राज्य विभीषण को मिलने से उसके कुल में ही रह जायेगा, इन सब के लिये बाहरी लीला रचना क्या उसे करनी है यह भी दृढ़ निश्चय कर चुका है वह। किन्तु इतने महत्व पूर्ण के प्रकट हो जाने से योजना असफल हो जाने की आशंका है उसे। ऐसी

मारी जो इनमें उसके जैसे दानु विलियम नहीं है उसे
हम कल से प्रत्येक कार्य स्थान में दूर जाता है
प्रवेश ही मानिन के पास जाता है सहायता लेने।

शक्ति का उपासक तो वीर होता ही है। शक्ति का उपासक है। सीता आदि शक्ति जगदम्बा है यह भलि भाँति जानता और मानता है। सीता जी उसके हृदय में बसी हुई हैं राम कहा नहीं उपास्य रूप में यह भेद त्रिजटा के मुख से खुला अशोक वाटिका में सीता के सम्मुख, यह सुन कर सीता के प्रसन्न मन में हर्ष होता है। हनने के पहले जगदम्बा सीता को मानसिक प्रणाम करना और प्रणाम कर आन्तरिक सुख प्राप्त करना इसकी पुष्टि करता है। ऐसा प्रतीत है वह उन आद्या शक्ति से मानसिक याचना कर रहा हो कि हे माता! मेरी आत्मिक खोज को सफल करना

"मन महुँ चरन बंदि सुख माना।" (३. २४)
"राहु के हृदयँ बसति जा देही ॥
सुनि बचन हरष बिषाद मन अति देखि पुनि त्रिजटाँ कहा" (६-९९)

राम और सीता अभिन्न हैं जहाँ सीता वहीं राम इस प्रकार राम भी उनके हृदय में विराजमान हैं।

(1536)

इस कारण से जाते समय मन में कल्पना है कि कहीं सर्वज्ञ श्री राम ने आकर उनकी कृपा उद्धार करा के योजना आप सफल न करें, वे प्रेम से उन्हें सुध कर कर उसका बेड़ा तो पार हो ही जायगा नाकि साथ कुल भी ही रह जायगा।

"चला गया बाप आतुर भयऊ इन्ह हौं कि सो जाऊँ।।" (३-२८)

लंका पहुँच पत्नी पूर्वक अशोक वाटिका में डेरा डाला।

इसलिए बाद से राम द्वारा बालि का मारा जाना भी उसने सुना है जिस बालि की कांख में वह दबा पड़ा रहा था। ~~[illegible]~~ रामदूत पवनसुत का प्रताप भी वह देख ही चुका है। रामदूत युवराज अंगद का बल बुद्धि भी वह देख ही चुका है।

विभिन्न स्थलों और प्रसंगों में रावण को विभिन्न व्यक्तियों ~~[illegible]~~ समझाया गया है उन्हीं तथा समझाने का प्रयत्न हुआ है।

अरण्य कांड में — मारीच + जटायु = २

सुंदरकांड में सीता जी + हनुमान जी + मंदोदरी

विभीषण + माल्यवान + शुक

लक्ष्मण लाल पत्र द्वारा = ९

लंकाकांड में — मंदोदरी + प्रहस्त + अंगद + माल्यवान
कालनेमी + कुम्भकर्ण   ½   ½
और रावण
(भ.पी. अग्रवाल पृ 226)

किन्तु प्रतिद्वन्द्वी है यह लेकिन इनके द्वारा उसकी श्रीराम के प्रति परब्रह्म की भावना की पुष्टि ही होती चली जाती है। अपने आन्तरिक योजना को गुप्त ही मन में छिपाये रखता है।

मनुष्य का अपने शरीर और प्राण से बढ़कर प्रिय संसार में दूसरी कोई वस्तु नहीं है" "देह प्रान ते प्रिय कछु नाहीं (५-२०५) सिर्फ अपना ही बलिदान करना नहीं सारे राक्षस कुल को युद्ध कराने का दृढ़ निश्चय है यह। इतना ऊंचा कोटि का भक्त है और ऐसी महान भावना है उसकी।

अपने कार्य सिद्धि के लिये जस काछिय तस चाहिय नाचा (२-१२५) के अनुसार बाहर से यह विरोधी बनकर चुन चुन कर एक एक को युद्ध में भेज भेज कर मरवाता चला जाता है। अन्तर्यामी प्रभु भी उस भक्त की भावना को जानकर सब को परमगति देते जा रहे हैं।

"बयरभाव सुमिरत मोहि निसिचर। देहि परम गति सो जिय जानी।" (६-४४)

(1538)

श्रीहरि के जय और विजय नामक दो द्वारपाल विप्र शाप से राक्षस हो गये थे वही रावन और कुम्भकर्ण होते हैं। शाप वश इन्हें तीन बार राक्षस जन्म लेना है। यह अनिवार्य जन्म है अतः इनका अमिट प्रभाव प्रदर्शन करते हैं प्रभु श्री राम अपने वाणों से युद्ध में मार कर इनकी ज्योति अपने मुख में लीकर।

"द्वारपाल हरि के प्रिय दोऊ। जय अरु बिजय जान सब कोऊ।
भए निसाचर जाइ तेइ महाबीर बलवान।
कुंभकरन रावन सुभट सुर बिजई जग जान॥" (१-१२२)
"तीनि जनम द्विज बचन प्रमाना।" (१-१२३)
"तासु तेज प्रभु बदन समाना" (कुम्भकरण ६-७१)
"तासु तेज समान प्रभु आनन" (रावन ६-१०३)

मानस के आधार उपदेश लौकिक विवेचन से यद्यपि मधु सुन्दर गुणागार कि रावन रिपु-भावी भक्त है उसने अपने और अपने कुल को मुक्त कराने हेतु सीता हरन एवं श्रीराम से युद्ध किया और अपने उद्देश्य में सफलता भी प्राप्त की। इसके आचरण से केवल यही शिक्षा निकाली जा सकती है कि भगवत प्राप्ति और अंत-सुधार के लिये प्राण, शरीर एवं परिवार का मोह छोड़कर दृढ़ता, युक्ति से जुटे रहना चाहिये उसको और उसके कुल को मुक्ति मिलना न मिलना यह तो व्यक्तिगत विषय हुआ समाज को उपदेश क्या आ ही जाती।

"पर पीड़ा सम नहिं अधमाई" (७-४१) की कसौटी पर कसने से तो रावन अपने बाहरी आचरण के कारण दुर्दान्त अधर्मी ही ठहरता है उसका अनुकरण करने से तो समाज गर्त में ही जायेगा। धर्म की परिभाषा तो है जिसे धारण कर सब सुखी हो सकें इसके विपरीत अधर्म से सब दुखी रहते हैं।

1540

इसीलिये श्री राम को मर्यादा पुरुषोत्तम एवं सुखधाम कहा जाता है इसके विपरीत रावण दुख-भवन है उसके आचरण त्याज्य हैं।

सीलेखं 47

12/12/62 मंगल बिधु की स्वराज्य हरख जानी (२-२१४)

प्रयाग से चित्रकूट की ओर भरत जी जा रहे हैं। उनका श्रीराम-प्रेम देख कर सुरेश को आशंका होती है कि कहीं भरत के प्रेमवश श्रीराम अयोध्या न लौट जाँय, सब काम चौपट हो जायगा - गुरु से निवेदन करते हैं कुछ किया जाय लेकिन भरत राम मिलन ही न हो पावे। इस पर गुरु समझाते हैं कि राज्यतिलक में बाधा तो श्रीराम की इच्छा से ही की गयी थी, मिलन में बाधा करने की सोचने ही से सिर्फ हानि ही हाथ होगी। देव गुरु के वचन नहीं हो सकते। देखना है प्रमाण को कि सचमुच ही श्रीराम की ही इच्छा से वन गमन हुआ है। फिर इसका कारण खोजा जाय।

प्रमाण-(१) संजय का आदेश देकर वशिष्ठ जी के बाद श्री राम की सबसे पहली प्रतिक्रिया इस युवराज पद के विरुद्ध होती है और श्रीराम के इसी इशारे पर देवताओं ने बाधा उपस्थित की। "राम हृदयँ अस बिसमउ भयऊ॥ बिमल बंस यहु अनुचित एकू। बंधु बिहाइ बड़ेहि अभिषेकू॥"(२-१०)

(1542)

(2) शारदा को देव कहते हैं यह सब श्रीराम की अनुसार ही हुआ करता रहे हैं "बुझ जानइ सब राम रजाई" (2-14)

(3) त्रिकालदर्शी वशिष्ठ जी भी जानते रहे हैं यह राजतिलक पार पड़ना नहीं है अतः शंका प्रदर्शित करते हैं "जौं बिधि कुसल निबाहै काजू" (2-10)

(4) जब कैकई ने राम को बुलाके सुमंत को भेजा राम तिलक के लिये सज कर नहीं आते हैं बल्कि कुभाँति ही चल पड़ते हैं "रामु कुभाँति सचिव सँग जाहीं।" (2-38)

(5) कैकई द्वारा सब बातें बताने पर श्री राम मन में मुस्का रहे हैं — मुस्काने का कारण एक तो कि शारदा ने कैकई [illegible] का मन बना दिया और दूसरे मुस्का कर इशारा किया और कैकई पर अपनी माया डाल दी ताकि ऐन मौके पर बदल न जायें "मन मुसुकाइ भानुकुल भानू।" (2-41)

(6) जब कौसल्या भवन में विदा माँगने आते हैं उनकी मुख मुद्रा प्रसन्न है, आनंद चौगुना है कि पिता द्वारा बाधा डाल दी गई सोच चला गया "मुख प्रसन्न चित चौगुन चाऊ। मिटा सोचु जनि राखै राऊ।" (2-51) "छूट जानि बन गवनु सुनि उर अनंदु अधिकानु" (2-51) किसी के हृदय में अधिक आनंद तभी होता है जब उसके मन की हो जाय

(7) कौसल्याजी से विनय करते हैं प्रसन्नता पूर्वक वन जाने की आज्ञा दें, तो वहाँ मुझे बहुत काम करना है। ध्यान दें वन में अपना बड़ा काम बताते हैं "जहँ सब भाँति मोर बड़ काजू॥ आयसु देहि मुदित मन माता। जेहिं मुद मंगल कानन जाता॥" (2-53)

(8) नानिहाल से लौटने पर जब कैकयी फिर कहती तब भी सब सुन खुशी होते हैं "राजु जानि सिय सुनि सुखु पावा" (2-51)

(9) सीता ने भी राम के गुणों ध्यान में नहीं रहने की ही हरख देखी "लखी राम हरख रहित नआलो" (2-56)

(10) चौदह वर्षों का वनवास क्यों - यह एक विचारणीय विषय है। यदि भरत को निष्कंटक करने के लिये ही देना था तो आज तक वनवास मिलता। किसी की मृत्यु का समय, प्रकार और हेतु पूर्व निश्चित रहता है पर प्रकार मत रहित। दशरथ की मृत्यु राम के वियोग में एवं श्रवण की मृत्यु उन के श्राप ही होती है और इन दोनों से चौदह साल का ही पता है। इन मृत्युओं का ... में कई नहीं आकाशवाणी-सर्वोच्च ही राम ही जानते हैं। अतः राम ने ही कैकई से प्रभु से वनवास दिलवाया था यह प्रभु की प्रेरणा सरस्वती पर मुझे है। आप इसको फेरना।

(१५४४)

(११) यह इच्छा प्रभु की नारद विमोह प्रकरण
में प्रभु के वचन नारद के प्रति "मम इच्छा कह दीनदयाला"
(१-१३९) में ही छुपी हुई है।

(१२) 'प्रसंग वाल्मीकि सर्ग ४ में प्रत्यक्षतः'
इस कल्प का वर्णन है कि नारद को श्रीराम ने कहा है
"रावण का वध करने के लिये मैं दण्डकारण्य जाऊँगा और
वहाँ १४ वर्ष मुनि वेष धारण कर रहूँगा" (श्लो ३८)

(१३) राम लक्ष्मण सीता जी के लिये वन जाने
का सामान तैयार करा कर रखना इसका द्योतक है कि
यह राम की प्रेरणा से ही हुआ है।

(१४) राम की इस इच्छा की जानकारी न रहने
के कारण लक्ष्मण लाल का कैकेई के प्रति रोष रहते
मन का रहा "मन कर क्षोभ न जाई" (८-६) किन्तु राम
जानते थे कि यह उनकी इच्छा से हुआ है और कैकेई निर्दोष
है अतः प्रारम्भ से निकलते समय से कहा था कि इनके
परहेज न करें सम्मान कर उनके प्यारे हैं
"प्रथम राम भेंटी कैकेई" (२-२४४) "प्रभु जानी कैकई लजानी
प्रथम तासु गृह गए भवानी" (७-९)

(१५) वशिष्ठ जी जानते थे राम की इच्छा को इसी
राम का तिलक नहीं होने का प्रश्नः दशरथ को

कहते हैं मंगल तो उसी दिन होगा जब राम युवराज पद ग्रहण करेंगे। यद्यपि वह कल नहीं होगा, किन्तु यह राज्याभिषेक आज्ञा समझना ही जावे

सुदिन सुमंगल तबहिं जब राम होहिं जुबराजु (२-४)

(१८) पंचवटी में जब सीताजी लक्ष्मण को राम के पास जाने के लिये मर्म भेदी कटु वचन कहती हैं तब लक्ष्मण का मन, हरि-श्रीराम की प्रेरणा से ही चलायमान होना यह सिद्ध करता है कि सीताहरण राम की इच्छा से ही हुआ है। अतः इस कार्य के लिये ऐन मौके पर अनुप्रेरणा करते हैं

हरि प्रेरित लछिमन मन डोला (३-२८)

कारण:- यह निर्विवाद है कि प्रभु के अवतार के हेतु अनेक होते हैं कथाएं और लीलाएं भी अनन्त हैं। कारणों को भी प्रभु के सिवाय अन्य कोई नहीं जानता फिर भी अटकलबाजी ही लगाते रहते हैं। यही कारण है कि हर एक उसी प्रसिद्ध को सिद्ध करने की चेष्टा करता हुआ पाते हैं

हरि अवतार हेतु जेहि होई। इदमित्थं कहि जाइ न सोई (१-१२१)

प्रकृत में तो रामायण से ये तन्तु निरखई पूर्वापर को चयन करने का प्रयास मात्र किया जा रहा है।

(१५६)

(१) मनु ने पुत्र रूप लेकर दान माँगा।

"हम काहू के मरहिं न मारें। बानर मनुज जाति दुइ बारें॥" (१-१७७)

और नारद के अनुसार इसके कपाल में लिखित के लिये है

"लिखित के सिर लेख अंक बिजुमाला। नर के कर आपन बध बाँचेसि॥" (६-२८)

मनुज का अर्थ मनु की सन्तति एवं मनुष्य दोनों ही है और श्रीराम में दोनों ही घटित होते हैं।

(२) जलन्धर की सती पत्नि वृन्दा का शाप कि तुमने मेरे साथ छल किया है मेरा पति भी छल कर तुम्हारी पत्नि हरेगा। और जलंधर का [illegible]

"जब तेहिं जानेउ मरम तब श्राप कोप करि दीन्ह॥" (१-१२३)

"तहाँ जलंधर रावन भयऊ। रन हति राम परम पद दयऊ॥"

(३) नारद के शाप का रूप दोनों ही बातें होनी हैं बानर सहायता करें एवं विरह में प्रभु दुःखी हों। यह घटना इसी शाप वश हुई इसकी पुष्टि नारद के कथन से है एवं हरि की इच्छा से नारद को शाप है इसकी पुष्टि प्रभु के श्रीमुख से है

"बंचेहु मोहि जवनि धरि देहा। सोइ तनु धरहु श्राप मम एहा॥"

"करिहहिं कीस सहाय तुम्हारी॥ नारि बिरहँ तुम्ह होब दुखारी॥" (१-१३७)

"मोर श्राप करि अंगीकारा। सहत राम नाना दुख भारा॥" (३-४५)

"मम इच्छा कह दीनदयाला।" (१-१३९)

"नारद बचन सत्य सब करिहउँ।" (१-१८६)

(४) श्रीराम का सीता के विरह में विलाप हुए बिना सती का विमोह, सतीत्याग, सती का देहत्याग, पार्वती जन्म, मदन दहन आदि रामायण की घटनाएँ कैसे होतीं। वनगमन के बिना सीता हरण कैसे सम्भव होता।

(५) वनगमन के बिना राम विरह में तड़पकर दशरथ की मृत्यु और अन्धे तपस्वियों के शाप की पूर्ति कैसे होती।

(६) क्रमानुसार विभिन्न स्थानों में एवं विभिन्न समयों में चलते राक्षसों का वध; केवट, सुतीक्ष्ण, शबरी आदि भक्तों की इच्छा पूर्ति; वानर भालुओं द्वारा युद्ध में सहायता; सेतु बंधन; रामेश्वर की स्थापना वनगमन के बिना कैसे होती।

(७) प्रेममूर्ति भरतजी के प्रेम एवं त्याग द्वारा भक्त की उत्कृष्ट कोटि की भक्ति का प्रदर्शन, पवन-सुत के शौर्य एवं राम भक्ति का बखान संसार को कैसे होता।

(८) मातृ-प्रेम, पितृ भक्ति, भ्रातृ प्रेम आदि गृहस्थ धर्मों का सजीव नमूना वनगमन से ही संभव हुआ है।

1548

अब कुछ इस ग्रंथ के लिये श्री मद् वाल्मीकीय के द्वारा रचित ग्रंथ (उत्तरकाण्ड) से भी दुहराया जाय

(१) भगवान शंकर के वाहन नन्दी का रावण को शाप कि उसके कुल का नाश करने के लिये वानर उत्पन्न होंगे और उसको चूर्ण-चूर करेंगे (सर्ग १६)

(२) ब्रह्मर्षि कुशध्वज की बेटी वेदवती का रावण को शाप कि अयोनिजा कन्या का जन्म लेकर वह उसके वध का कारण बनेगी (सर्ग १७)

(३) विष्णु ने भृगु ऋषि की पत्नी का वध किया तब भृगु का शाप कि मनुष्य लोक में जन्म लेकर दीर्घकाल तक पत्नी वियोग का कष्ट सहन करना पड़ेगा (सर्ग ५१) - इसी शाप के कारण राज्याभिषेक के बहुत वर्षों बाद राम द्वारा सीता का त्याग हुआ। इसका कारण सीता हरण का विलाप कैसे बतलाया और यह तभी सम्भव जब सीता और राम साथ वन जाँय।

समस्त सृष्टि की अति सूक्ष्म से सूक्ष्म घटना भी उस प्रभु अखिल ब्रह्मांड नायक, हरि श्री राम की इच्छा से ही होती है उनकी इच्छा के बिना एक पत्ता भी नहीं हिल सकता अतः प्रत्येक घटना में, अच्छी हो या बुरी, उस प्रभु का ही हाथ देखना चाहिये अस्तु। उपरोक्त तर्क कुतर्क में न पड़ कर सतत श्री हरि का स्मरण करना ही समुचित है।

श्रीराम जयराम जय जय राम॥

(1550)

ह. लें. सं 48

25/12/82

त्रिजटा

विभीषण की सुता त्रिजटा अपने गुणों में शील के अनुरूप ही अपने गुणों से परिपूर्ण होने के कारण ही त्रिजटा नाम है। वह बुद्धी है और इन तीनों गुणों से सम्पन्न उत्तम प्रकार की नारी है ऐसी राक्षसी है। मानस में इसका नाम आते ही तुलसीदास जी ने राक्षसी एका कह कर इस बात का संकेत कर दिया एवं साथ ही इसके तीनों गुणों का वर्णन कर दिया। त्रिजटा नाम राक्षसी एका। रामचरन रति निपुन बिबेका। (सु. का.) कह कर श्री रामचरणों में प्रेम है व्यवहार निपुण है और ज्ञानी है। वह जानती है प्रभु श्रीराम परब्रह्म है, श्रीराम और सीता एक ही है। हरि भजन ही सत्य है बाकि सारा संसार-व्यवहार असत्य है। अतः इस बात को जानती है कि सीता जी की सेवा से ही सब का कल्याण है। उसके इस श्रीराम

चरन प्रेम के ही कारण उसे स्वप्न में भविष्य का दर्शन होता है और बुद्धि सत्ता के कारण ही अपने उपस्थित सारी राक्षसियों को जो कि रावण के आदेश से सीताजी को विविध भाँति त्रास दे रही थीं अपना स्वप्न सुनाकर भविष्य में होनेवाली घटनाओं को सुनाते हुए वे मैत्रीभाव से सबों को सीताजी की सेवा में लगाकर सबों का कल्याण करा दिया। यही है इनका संत स्वभाव। यह स्वप्न सुनकर सब डर जाती हैं और सीताजी के पैरों पड़ जाती हैं। यानि अपने कुकृत्यों के लिए क्षमा माँगती हैं और जहाँ तहाँ चली जाती हैं।

"सबन्हौ बोलि सुनाएसि सपना। सीतहि सेइ करहु हित अपना।
तासु बचन सुनि ते सब डरीं। जनकसुता के चरनन्हि परीं॥"

प्रातः काल है यह स्वप्न आया है त्रिजटा को और उस वृद्धा को यह अनुभव है कि ऐसा स्वप्न किसी दुखियारी स्त्री के सम्बन्ध में आता है तब वह अपने दुखों से छूट कर पति को प्राप्त करती है। (मा. दी. पृष्ठ 100)

वह स्वयं भक्त है, ज्ञानी है इसीलिये
ऐसा उपदेश सबको दिया। 'सेवा करो' यह भक्ति है
और "अपना हित जाने इनको" यह ज्ञान है।

माता जिस प्रकार अबोध से बालक की
सेवा करती है या यों कहा जाय सेवा किये
रह नहीं सकती एवं सन्तान की विपत्तियों
से रक्षा करती है उसी प्रकार इस वृद्धा ने
भी सीता जी की सेवा एवं क्रूर राक्षसियों
के कुकृत्यों एवं कुवाक्यों से रक्षा की। एक यह
वृद्धा है अतः [illegible] करती हुई
जगदम्बा सीता ने "मातु बिपति संगिनि तैं
मोरी" (५-१२) कह कर इसको सम्मान देती है।

जब जानकी जी चिता बना कर आग
लगाने का आग्रह इससे करती हैं ताकि
अपने विरह का अन्त कर सकें तब
कितनी बुद्धिमानी से "निसि न अनल मिल
सुनु सुकुमारी" (५-१२) कह कर वह घर चली गई
ताकि कहीं सीता जी आग मिलने की उपाय न बता देवें
जिससे आग लगाते ही अप्रिय घटना हो जाय। एवं
रावण की लंका जलाने का स्वप्न देख चुकी है अतः

पवनसुत अपने को अवसर दे रहा है। उसने धनुष यज्ञ में रावण से भी उनका नाश उचित है और परशुराम का गर्व हरने, अयन की घटना, सुपनखा के नाक कान काटने, खरदूषण मार के रावण दुबारा निशाचरों का संहार एवं राक्षसविहीन करने की प्रतिज्ञा स्मरण करा कर सत्य संकल्प तुम्हारा उद्धार अवश्य करेंगे अतः चिन्ता मत करो। सीताजी ने कर जोड़ कर आग मांगी थी तो त्रिजटा चरण पकड़ कर बता रही हैं मैं प्रभु की दासी हूँ। वृद्धा ने माता की तरह ममता के कारण आग न मिलने का बहाना कर दिया था ऐसी बुद्धिमती थी वह।

जिस रात को मूर्छित लखन को सुषेण को लंका से लाकर उपचार करा रहे थे उस रात को त्रिजटा ने आकर सीताजी को युद्ध के सारे समाचार कह सुनाये। सिर कटने पर भी रावण नहीं मर रहा है सुन कर जब सीता उदास और चिन्तित होकर प्रभु का स्मरण कर विलाप करने लगती हैं तब त्रिजटा कहती है कि इसके हृदय में आप उपास्य रूप से बसती हैं और आपके हृदय में राम और श्रीराम के उदर में अनेक भुवन

(1354)

है। जिनके हृदय में बाण लगने से मन का नाश हो विकल हो जाने पर बिना शरीर [illegible] का आधार तुम से हट जायगा। इसलिए शरीर उसे कुछ भी डालेंगी।
(2) श्री राम साधारण से उसे मार सकते हैं परन्तु वह [illegible] कर रहे हैं लक्ष्मण उन्हें मनुष्य ही मानते
(3) शिवजी जिनको उसने सिर चढ़ाये हैं उसका फल भुगतना, शिवजी की उदारता विश्व को दिखाते हैं
(4) इस रावण मृत्यु [illegible] पुनी नहीं हुआ है।
(5) १४ वर्ष वनवास के बीच हुए सबको लोगों कौतुक कर कर बीत रहे हैं (6) निज भक्तों की परीक्षा ले रहे हैं कि किस किस का दृढ़ विश्वास है कि राम रावण को मारेंगे (7) श्री राम कुटिल चाल है अतः प्रथम भुज दिखा कर विभीषण से रावण की मृत्यु का भेद कहलवा कर उसे तुरन्त मारेंगे (8) कल ही उसे मारेंगे कहने पर सीताजी जो रावण के प्रति [illegible] पश्चात [illegible] को [illegible] उन्हें संतोष हो गया। इस प्रकार युक्ति पूर्वक समझाने में त्रिजटा का ज्ञान और व्यावहारिक बुद्धि एवं प्रतिभा की अच्छी झांकी होने से उसकी भक्ति का परिचय मिलता है। "सुनु सुत सोहि बहुत भांति समुझाई" (६-१००) में [illegible]
[illegible]

संलै नं. ५१ (1555)

२४/१२/४२

शिवोपासना

श्रीरामचरितमानस भगवान की महाभक्ति के साथ साथ भगवान शंकर की भक्ति का भी प्रचार करती है। प्रत्येक कांडों में मंगलाचरण स्वरूप यह ही हैं और प्रथम लिपियों में तुलसीदासजी, कहीं न कहीं भगवान शंकर को भी देते आये हैं। यहाँ तक कि सुन्दर काण्ड तो शंकर के अवतार श्री हनुमानजी के ही गुणगान से भरी हुई है।

शिवोपासना की महत्ता श्रीरामजी के भी मुख से वर्णित:-

"जपहु जाइ संकर सत नामा। होइहि हृदयँ तुरत बिश्रामा
जेहि पर कृपा न करहिं पुरारी। सो न पाव मुनि भगति हमारी (१-१३८)
"सिव पद कमल प्रिय मोहि कूल॥
संकर प्रिय मम द्रोही सिव द्रोही मम दास।
ते नर करहिं कलप भरि घोर नरक महुँ बास॥ (६-२)
जे रामेस्वर दरसनु करिहहिं। ते तनु तजि मम लोक सिधरिहहिं
जो गंगाजलु आनि चढ़ाइहि। सो साजुज्य मुक्ति नर पाइहि"
"संकर भजन बिना नर भगति न पावइ मोरि। (७-४५)
"भगति मोरि तेहि संकर देइहि" (

पूजा तीन प्रकार की होती है। (क) वैदिक
यह सात्विक और वैदिक रीति से होती है, वैदिक
उपासक का अन्य देवों से विरोध नहीं होता। (ख) तान्त्रिक
~~(ख) वाममार्गिक~~ - ये ~~होती~~ तान्त्रिक मंत्रों से होती है। [illegible]
तमोगुणी पूजा है और तान्त्रिक उपासक वैष्णवों
से विरोध रखते हैं। (ग) पौराणिक - यह रजो
गुणी पूजा है। उपासक तीनों ही सदा अपने इष्ट
के समीप रहने की इच्छा रखते हैं, सेवा ध्यान कीर्तन और अर्चन
श्रीरामचरित मानस के उत्तरकाण्ड के दोहा
१०५ से १०८ तक वर्णित शूद्र तन धारी काकभुशुण्डी
एवं उनके गुरु वैदिक विप्र प्रसंग का अवलोकन
किया जाय। उज्जैन भूमि है कलिकाल है। गुरु
विप्र हैं वैदिक रीति के शिवोपासक, अन्य देव
की निन्दा नहीं करते, परोपकारी सात्विक प्रकृति
है। शूद्र उनके समीप पहुँचता है उसकी वाहरी
नम्रता देख गुरु उसे शिव मंत्र देकर शिष्य
बनाते हैं। ~~शिष्य~~ वैदिक उपासक से वैदिक मंत्र की
दीक्षा देना [illegible] शूद्र होने के कारण
इसकी प्रकृति तामसिक प्रवृत्ति का है। विष्णु
विरोधी है। मंदिर जाकर वैदिक मंत्र जपते

करती है वह जन्मजात संस्कार के कारण निरंतर विरक्त को पाल पूर्ण करने का प्रयास करता है। जबकि गुरु उसको देखकर समझते हैं कि इसने द्रोह छोड़ दो लेकिन चूंकि उसके गुरु शिवजी को गुरु ने हरि का सेवक कहा इसलिये गुरु से भी द्रोह करने लगता है यहां तक कि हर-मंदिर में भी गुरु का अपमान करने से नहीं चूकता इस प्रतिक्रिया पर रुष्ट होकर शिव उस शूद्र को भयानक शाप देते हैं। इसी प्रकार गुरु उत्पन्न भाव पर ध्यान न देकर उसके कल्याण के लिये भगवान शंकर की स्तुति करते हैं (दोहा १०८)

उपरोक्त स्तुति में प्रयुक्त भगवान शंकर के विशेषणों का अर्थ जाय (कुछेक गुण वाचक विशेषणों को)

निर्वाणरूपं - यानि मोक्ष स्वरूप है मूर्तिमान मोक्ष ही हैं।

करालं - यानि विकराल और कठोर हैं।

महाकालकालं - महाकाल के भी काल हैं यानि मृत्युंजय हैं।

कृपालं - यानि मनुष्य को कृपालु हैं।

दयालं - यानि मनुष्य पर दयालु हैं।

अब जरा लंका कांड के मंगलाचरण के तीसरे श्लोक में गोस्वामी तुलसीदास द्वारा शिव

(1560)

अपार कृपालु होते हैं उनके विलक्षण
अनुग्रह होता अर्थात् माता-पिता प्रायः सन्तान
शिष्य हितैषी होते हैं अतः अपार हित-चिन्तन
करते हैं।

अब पुनः उपरोक्त विषय एवं गुरु
शिष्य के अपराध आदि भगवान शंकर श्री
लोक के पालक हैं अतएव व गुरु को शिष्य पर क्रोध
नहीं होता है किंतु शुद्ध बुद्धि के वशीभूत
अपने अपराध में गुरु को भी दण्ड देकर
का कठोर शाप रूपी दंड देते हैं नहीं हिचकते
यहां निमित्त दंड एक पाप के अनुरूप वर्णन है।
जब गुरु द्वारा स्तुति करने पर प्रसन्न होकर वर
देने को प्रस्तुत होते हैं तब गुरु की प्रार्थना पर
भगवान शिव गुरु की अपनी भक्ति देखकर
उसका भी कल्याण करते हैं शंकर अपार
दया वश से शिष्य के लिये शाप का अनुग्रह
और कल्याण चाहता है अतः इनकी दृष्टि में
सबसे पहले दया उमड़ती है और शाप के
कारण जन्म मृत्यु में कोई दुःख नहीं होने का
वरदान देकर शाप की उग्रता को अल्प कर

हलका कर देते हैं इस प्रकार प्रभु की दयालुता
दी जाती है इसके बाद उसके ऊपर प्रभु की
कृपा बरसाते हैं क्योंकि वह प्रभु के भक्तों
द्वारा प्राप्त जाति, प्रत्येक जन्म का ज्ञान बना
रहना एवं अप्रतिहत गति यानि लोक लोक में
कहीं भी जा सकते हैं की शक्ति प्रभु की ओर
से उन्हें प्रदान कर देकर प्रभु की कृपालुता
का परिचय देते हैं। फलस्वरूप काकभुशुण्डी
जी का आश्रम है जिसके चारों ओर योजन तक
देखते भगवान शंकर और भुशुण्डी जी
और ब्राह्मण वन का प्रमोदवन की सिद्धों
पर प्रभाव है " काकभुसुंडि संग हम दोऊ।
... बिप्रन्ह किराहिं मराल मल मूल (७-१२६)
ऐसी स्थिति में भगवान शम्भु स्वयं भुशुण्डी जी के
आश्रम पर आते हैं उनके मुख से भी राम कथा
सुनने के लिये और वहां निवास करते हैं
"तब कछु काल मराल तनु धरि तहँ कीन्ह निवास।
सादर सुनि रघुपति गुन पुनि आयउँ कैलास।।७-५७
भुसुंडी जी का नाश नहीं है। "तासु नास कल्पांत न होई।"
प्रभु काल रहित भुसुंडी जी के सम्बन्ध में (७-५६) तरह से

श्री ईश स्तवन करते हैं, "प्रारम्भ में प्रभु की अद्भुत प्रसन्न
करते हैं उनकी अनुविरुद्ध नहीं कर उनसे जाते हैं
यह है इस प्रबन्ध की भगवान शंकर की कृपा
"लघु बायस बपु धरि हरि संगा। देखउँ बालचरित बहु रंगा।"
जेहि निपट पइ जाइ रामहि सो छबि देखउँ करि स्नाऊँ॥ ७-७५
"सोइ सब कहहिं बिबिधि बिधि क्रीड़ा" ७-७७
"रघुबीर भक्ति बिसुद्ध सब श्रुति पुरान जो गाव।" ७-८४
स्वमस्तु करहि रघुनायक। नर मुरख लखि हरि उर आई॥

प्रबन्ध के वैदिक शैव के विषय को देखा जाय।
प्रवृत्ति के स्वरूप जैसे तामसी शैव को देखा जाय।
उपरोक्त वैदिक द्वारा शिव स्तुति में ~~द्वै~~ गुणों का वर्णन है।
कल्याण कल्पांत कारी सदा सज्जनानन्द दाता पुरारी॥ एवं
सच्चिदानन्दघन व्यापी भगवान शंकर कल्याण करने
वाले हैं, सत्पुरुषों को आनंद देते हैं और सच्चिदानन्द
सर्वव्यापी सर्वविद्यावास हैं अर्थात् सब प्राणी मात्र
के निवास स्थान अथवा सब प्राणियों में
निवास करने वाले हैं। पहले दोनों गुण तो हैं
वैदिक भक्तों के विषय में दीन एवं इसमें
तीसरे को देखा जाय।

रावण परम दुराचारी, प्रसिद्ध दुष्ट और पापिष्ठ है
उसने सारे विश्व को त्रस्त कर रखा है। अनुचर उसके
उसकी कीर्ति के बल हैं लंका [illegible] डोलती है। भगवान
भूतभावन की तो सभी सन्तान हैं यदि कोई
व्यक्ति या समाज अपने को बेकार कर देते हैं तो
वह उनकी रक्षा करने के लिये अपना कर्तव्य
दोषों का नाश करना प्रभु को अभीष्ट होता है
अतः असुरों का नाश अभीष्ट है किन्तु असुरों
का कल्याण करना भी भगवान शंकर को
उतना ही अभीष्ट रहा है अतः वह ऐसी
व्यवस्था देते हैं जिसके फलस्वरूप उनका कल्याण
हो। भगवान श्रीराम द्वारा उनके मारे जाने
हैं और उनके हाथ से मरकर इनका मृत्युलोक
में पुनर्जन्म का प्रावधान शेष हो जायेगा। अतः
श्रीरामायण युद्ध में भगवान शंकर रावण की
सहायता नहीं करते हैं बल्कि हनुमान का
शरीर धारण कर उसकी मृत्यु में ही सहायक
सहायक रहे हैं। रावण की ज्योति श्रीराम के मुख में
समा जाती है और वह कैवल्य एवं मुक्ति
प्राप्त करता है। इस प्रकार अपने भक्त का सिद्धे

1564

अर्थ से कल्याण कर देते हैं।

द्वापर में अर्जुन ने अनन्य भक्त बालामुनि की सहायता से भगवान शंकर हरि श्री कृष्णचन्द्र से युद्ध तक कर चुके हैं और अन्त में श्रीकृष्ण से मिलन कर उनके [illegible] प्राणों की रक्षा करायी है।

स्वलेख सं ५० (1565)

1-1-83

स्मरण

निर्गुण या सगुण ब्रह्म की द्वैत या अद्वैत; सतोगुणी, रजोगुणी या तमोगुणी; ध्यान, जप, तप, पूजा, पाठ, भजन, कीर्तन या गुणगान; यानि किसी प्रकार की उपासना आरम्भ तभी सम्भव हो सकती है जब उपासक के मन में उपासना यानि उप+आसना अर्थात् अपने उपास्य की ओर जा बैठने या जाने या उठते ही अपने पास बुलाने यानि एक शब्द में सान्निध्य की इच्छा जागृत हो। इस दिशा में सबसे पहला कदम मन ही उठाता है कारण सारी इन्द्रियों का संचालक तो मन ही है। यह इच्छा जागृत होते ही अपनी रुचि अनुरूप अपने इष्ट अथवा उपास्य की सकल सूरत की या तो कल्पना मन करेगा या सजी हुई चित्रपटों में देखी हुई सूरत को मन में बैठायेगा और तदनुरूप नाम भी चुनेगा क्योंकि इसके बिना किसको और किस प्रकार पुकारेगा। जब यह सब बात के मानस पटल पर बैठ चुके तब उपासना के समय

अपनी अपनी रुचि से नामों में भी उपास्य को
इष्ट दर्शन या नाम रूप आदि का स्मरण
कर सकेगा। फिर उपासक अपनी रुचि के
अनुरूप कोई भी विधि अपनावे। इस
प्रकार की उपासनाओं का बीज यह स्मरण ही
है फिर इस स्मरण रूपी जड़ से वृक्ष की
शाखा, पत्ते फूल फल चाहे किसी प्रकार की
उपासना के रूप में प्रकट हों। अनुरागी भाव
या कुभाव, अरि भाव या आलसी भाव जो
भी भाव हो जीव की हो स्मरण का प्रमुख स्थान
तो रहता ही आया है अतः स्मरण की प्रधानता का
अपरिहार्य सख्य वात्सल्य कान्त आदि भावों में
उनको मिलन विरह की स्थिति निर्माण करती है
कोई भी बालक युवा, वृद्ध नर नारि किसी भी वर्ण
या जाति का हो सबको स्मरण का समान अधिकार
है। चाहे जिस किसी भी स्थान में, जिस किसी भी
स्थिति में जिस किसी भी समय स्मरण किया जा
सकता है। अभ्यास हो जाने पर चलते फिरते उठते बैठते
खाते पीते सोते जागते स्मरण बना ही रह सकता है
इसके लिए निश्चिन्त होने की आवश्यकता ही नहीं रहती।
"कर सेवकाई करो विधि नाना। मन राखहु जहँ कृपानिधाना॥"

स्मरण के द्वारा उस स्वरूप का आह्वान होता है। प्रस्थान के समय पुष्प से इष्ट के स्मरण से कार्य सिद्धि होती है। अमंगल से रक्षा होती है मन वचन कर्म तीनों सिद्ध होते कार्यारम्भ के समय स्मरण से निर्विघ्न कार्य सम्पादन होता है।। बिजली उत्पादन ~~केन्द्र~~ से जिस प्रकार तार के माध्यम से बिजली विभिन्न क्षेत्रों में पहुँचती है अथवा यों कहो आप जिस बेतार यन्त्र द्वारा सम्वाद एक स्थान से दूसरे पहुँचता है अथवा टेलिविजन से छवि अन्यत्र ~~दीखती~~ पहुँचती है उसी तरह स्मरण के माध्यम से उपास्य या इष्ट की शक्ति प्रेरणा उपासक तक पहुँचती है और स्मरण की प्रगाढ़ता होने पर इष्ट की छवि तक उपास्य के हृदय में आ जाती है और वह विभोर हो जाता है खम्भ फाड़ कर नृसिंह भगवान का प्रकट होना, गजेन्द्र मोक्ष, द्रौपदी चीर हरन, बालक ध्रुव को अटल ध्रुव स्थान प्राप्त करना आदि स्मरण प्रभाव से विपत्तियों के ज्वलन्त ऐतिहासिक दृष्टांत हैं (~~[illegible] से विपत्ति निवारण~~)। "हरिस्मृति सर्व विपद्विमोक्षणम्" हरि स्मरण से सब विपत्तियों का नाश हो जाता है

(1568)

अपनी गृहस्थी के सारे काम करती हुई भी हर समय श्री कृष्ण एवं उनकी लीलाओं का हर समय स्मरण करने वाली ब्रज की गोपियों को ब्रज गोपांगनाओं द्वारा स्मरण का पाठ पढ़ाने वाली अनुपम गोपिका कहा जाये तो अतिशयोक्ति नहीं होगी।

अस्तु प्रभु श्री रामचरितमानस के बाग में स्मरण सुधारस का पान किया जाये। तुलसीदासजी निर्विघ्न ग्रन्थ रचना के लिए मैं वन्दना प्रकरण में मंगलाचरण के बाद तुरन्त ही श्री गणेशजी का स्मरण करते हैं

जो सुमिरत सिधि होइ गन नायक करिबर बदन। (1-1)

प्रभु श्री राम गंगा पार करने के पहले ~~[illegible]~~ महादेव शंकर एवं गणेशजी का सुमिरन करते हैं एवं ~~[illegible]~~ स्नान का महत्व बताते हुए स्मरण करने का उपदेश देते हैं एवं भरत के स्नान का महत्व बताते हुए एवं ~~[illegible]~~ अपने [illegible] का उल्लेख करते हैं

"तब गनपति सिव सुमिरि प्रभु नाइ सुरसरिहि माथ। (2-104)

"मिटहिं पाप प्रपंच सब अखिल अमंगल भार।"

लोक सुजसु परलोक सुखु सुमिरत नामु तुम्हार। (2-263)

"बयरु भाव सुमिरत मोहि निसिचर। देहिं परम गति सो जियँ जानी। (6-45)

सुमिरि संभु गुरु निज पद किर [illegible] (1-345)

"भरत दसा सुमिरत मोहि निमिष कल्प सम जात॥
सुमिरत अनुज प्रीति प्रभु पुनि पुनि पुलक सरीर॥
करेहु कल्प भरि राजु तुम्ह मोहि सुमिरेहु मन माहिं। (६-११५)
"निज निज गृह अब तुम्ह सब जाहू। सुमिरेहु मोहि डरपहु जनि काहू॥"
(६-११८)
"जाइ भवन मम सुमिरन करेहू। मन क्रम बचन धर्म अनुसरेहू॥ (७-१६)
"कबहूँ काल न ब्यापिहि तोही। सुमिरेसु भजेसु निरंतर मोही॥
(७-८८)

भगवान शंकर - सती द्वारा सीता का वेष धारण करने के कारण एक कर्तव्य अकर्तव्य का निर्णय शंकर नहीं कर पाते हैं तब श्री राम के स्मरण से उन्हें मार्गप्रदर्शन मिलता है; उसके बाद श्रीराम का स्मरण करते हुए कैलाश की ओर जाते हैं; पार्वती जी। विवाह के समय भी श्री राम का ध्यान करने के बाद विवाह के आसन बैठते हैं; सती त्याग का निश्चय कर जब समाधिस्थ हो जाते हैं तब राम नाम का स्मरण कर समाधि तोड़ते हैं; उमा को एवं गरुड़जी प्रभृति को श्रीराम के ध्यान के प्रभाव बताते हैं।

"सुमिरत रामु हृदयँ अस आवा। चले भवन सुमिरत रघुबीरा॥"
(१-५७)
"बैठे सिव बिप्रन्ह सिरु नाई। हृदयँ सुमिरि निज प्रभु रघुराई॥"
(१-१००)
"रामनाम सिव सुमिरन लागे। जानेउ सतीं जगतपति जागे॥"
(१-५८)
"सादर सुमिरन जे नर करहीं। भव बारिधि गोपद इव तरहीं॥"
(१-११७)
"हरि ब्यापक सर्बत्र समाना। प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना॥"
(१-१८५)
उमा राम सुभाउ जेहिं जाना। ताहि भजनु तजि भाव न आना

(1570)

सती जी – पति भगवान शंकर द्वारा परित्याग
के कारण अति दुखित हो मन में श्री राम का स्मरण
कर इस दारुण दुख से मृत्यु द्वारा छुटकारा चाहती हैं।
"मन महुँ रामहि सुमिर सयानी ॥(१-५८)
श्री लक्ष्मण जी – श्रीराम के युद्ध में मेघनाद
को मारने जाते हैं तो अति प्रबल मायावी का संहार करने
के पहले श्री राम के प्रताप का स्मरण करते हैं
"सुमिरि कोसलाधीस प्रतापा। सर संधान कीन्ह करि दापा॥"
(६-७६)
श्री भरत जी – श्रीराम और सीता के चरणों का
स्मरण कर चित्रकूट यात्रा प्रारंभ करते हैं; श्रृंगवेरपुर में
सीताराम की साथरी को प्रणाम करने के बाद श्री राम का
स्मरण कर प्रेम में डूब जाते हैं; पथ में प्रभु का स्मरण करते
जाते हैं; चित्रकूट परिक्रमा के समय भी श्री राम का चिंतन
करते हैं; इनका श्रीराम स्मरण इतना गाढ़ा है कि श्री राम
भी इनका स्मरण करते रहते हैं; बूटी ले जाते
समय जब हनुमान जी इनके बाण से गिर पड़े थे तब
प्रभु का स्मरण करते का जब पवनसुत उठते हैं तब हर्षित
हो श्री राम का स्मरण करते हैं; जब श्री हनुमान जी प्रभु के
लौटने का संवाद लेकर पवनसुत आते हैं तब वे इन्हें राम
का ध्यान करते पाते हैं फिर भी इनको तो शुभ चिन्ह

जो उन्हें ऐसा रहे कि श्रीराम उनको अपना सेवक मानते हैं तो—

"सुमिरि राम सिय चरन तब चले भरत दोउ भाइ।।" (2-185)

"सकल बचन सुनि करि [illegible] बास चले सुमिरत रघुबीरा" (2-202)

"सेवक सुहृद सचिवसुत साथा। सुमिरत लखनु सीय रघुनाथा।।" (2-212)

"निज गुन सहित राम गुन गाथा। सुनत जाहिं सुमिरत रघुनाथा।।" (2-[illegible])

"तेहि बासर बसि प्रातहीं चले सुमिरि रघुनाथ।" (2-224)

"कतहुँ बैठि मुनि आयसु पाई। सुमिरत सीय सहित दोउ भाई।।" (2-312)

"एहि बड़ि बात भरत कइ नाहीं। सुमिरत जिन्हहि रामु मन माहीं"।।

"सो कपि होइ बिकल अनुकूला। जौं सेवक रघुपति अनुकूला।।

"प्रीति सहित हृदयँ नहाइ सुमिरि राम रघुकुल तिलक।।" (6-54)

"राम राम रघुपति जपत स्रवत नयन जलजात।।" (7-1)

"कबहुँ कपि कृपाल मोरि नाईं। सुमिरहिं मोहि दास की नाईं।।

निज दास ज्यों रघुबंस भूषन कबहुँ मम सुमिरन कर्यो" (7-2)

महर्षि वसिष्ठ नामकरण के समय श्री राम के अंशभूत शत्रुघ्न जी के स्मरणमात्र से शत्रु का नाश कर सकने की क्षमता बताते हैं।

"जाके सुमिरन तें रिपु नासा। नाम सत्रुहन बेद प्रकासा।।" (1-197)

हिमवान मैना को उपदेश देते हैं कि सोच छोड़ दो भगवान का स्मरण करो नहीं कल्याण होगा।

"प्रिया सोचु परिहरहु सबु सुमिरहु श्री भगवान" (1-71)

(1572)

पार्वती जी - जगदम्बा पार्वती जी सब
भोग त्याग कर भगवान शंकर का स्मरण करती हुई
तप करती हैं "पति पद सुमिरि तजेउ सब भोगू ।। (१-७४)

मनु महाराज - परब्रह्म का स्मरण करते
तप करते हैं "सुमिरहिं ब्रह्म सच्चिदानंदा ।। (१-१४३)

सृष्टिकर्ता ब्रह्मा जी - जब देवताओं को
लेकर गो तनु धारी पृथ्वी अपना दुखड़ा सुनाने के
लिये ब्रह्मा जी के पास जाती है सब कार्य निष्फल से
साथ में एकमात्र श्री हरि का स्मरण करने का राय दे
देते हैं एवं स्वयं भी परब्रह्म का स्मरण करते हैं
"धरनि धरहि मन धीर कह बिरंचि हरिपद सुमिरु ।। (१-१८४)
"अस्तुति करत जोरि कर सावधान मति धीर ।। (१-१८५)

देवराज इन्द्र - चित्रकूट में जब श्री राम भरत
को प्रेम विह्वल देखते हैं कि जैसे कृपा सुख कहीं न बढ़ी
है कहकर सब घबड़ा कर इन्द्र एवं देवताओं को
अपनी भलाई की कामना से भरत का स्मरण करने
का उपदेश देते हैं "हियँ सप्रेम सुमिरहु सब भरतहिं ।। (२-२६५)

देवर्षि नारद - सतत हरि गुणगान करने
वाले देवर्षि नारद । हिमवान के सम्मुख पार्वती
जी के स्मरण का प्रभाव बतलाते हैं; श्री हरि का

स्मरण करके गिरिजाजी को आशीर्वाद देते हैं; नारदजी निम्नोक्त प्रकरण में श्री हरि का स्मरण करने से शाप की गति बाधित होकर नारद समाधिस्थ हो जाते हैं; एवं श्री हरि नारद को स्मरण का प्रभाव बताया करते हैं —

"एहि कर नामु सुमिरि संसारा। त्रिय चढ़िहहिं पतिव्रत असिधारा॥
अस कहि नारद सुमिरि हरि गिरिजहि दीन्हि असीस॥ (१-६८)
"सुमिरत हरिहि श्राप गति बाधी। सहज बिमल मन लागि समाधी॥ (१-१२५)
तुम्हरे सुमिरन तें मिटहिं मोह मार मद मान॥ (१-१२८)

सम्पाती — सिंधु तट पर उदास बैठे वानर दल को श्री रामनाम के स्मरण बताकर उपाय करने को प्रोत्साहित करता है।

"पापिउ जाकर नाम सुमिरहीं। अति अपार भवसागर तरहीं॥
तासु दूत तुम्ह तजि कदराई। राम हृदयँ धरि करहु उपाई॥" (४-२८)

जटायु जी — रावण से सीताजी को छुड़ाने के युद्ध में जब रावण पंख काट डालता तब कटा पंख पक्षी जटायु भूमि पर श्री राम का स्मरण करता हुआ गिर पड़ता है; सीता को खोजते हुए प्रभु जब वहाँ पहुँचते हैं उसे श्री राम के पद-चिन्हों का ध्यान करते हुए पाया फलस्वरूप पिता के समान उसकी क्रिया

प्रभु ने हाथों को एवं उनके गुणों का ध्यान भी दिया

"काटेसि पंख परा खग धरनी। सुमिरि राम करि अद्भुत करनी॥ (3-29)

"उघारे पद पीयपति दै रखा। सुमिरत राम चरन जिन्ह रेखा॥ (3-30)

"तनु तजि तात जाहु मम धामा। (3-31)

"तेहि की क्रिया जथोचित निज कर कीन्ही राम॥ (3-32)

पवनसुत – प्रभु राम के प्रिय भक्त पवनसुत का श्रीराम नाम स्मरण इतना गाढ़ा है कि इस स्मरण के प्रभाव से श्रीराम उनके हृदय में रहते हैं; लंका प्रवेश के पहले प्रभु का स्मरण करते हैं; विभीषण के सामने प्रभु के गुणगान एवं उनकी कृपा का स्मरण करते ही उनके नेत्रों में जलधार बहने लगी; सीता के वाटिका में कष्ट निवारण के लिये प्रभु का स्मरण के लिये विनय करते हैं. फिर विकट रूप धर लौटते प्रभु के सन्मुख स्मरण की कहानियाँ बखानते हैं; भरत की बाण से मूर्छित होते भूमि पर गिरते समय प्रभु का स्मरण करते हैं "सुमिरि पवनसुत पावन नामू। अपने बस करि राखे रामू॥ (1-26)

"लंकहि चलेउ सुमिरि नरहरी॥ (5-4) "पैठा नगर सुमिरि भगवाना॥ (5-4)

"कीन्ही कृपा सुमिरि गुन भरे बिलोचन नीर॥ (5-7)

"कह कपि हृदयँ धीर धरु माता। सुमिरु राम सेवक सुखदाता॥ (5-15)

"कह हनुमंत बिपति प्रभु सोई। जब तव सुमिरन भजन न होई॥ (5-32)

"सुनत जुगल तन पुलक मन मगन सुमिरि गुन ग्राम॥

"चलेउ हृदयँ धरि कृपानिधान (6-58)

"आलयँ हाथि सुमिरत रघुनाथा। (5-23)
"चलेउ हरषि हियँ धरि रघुनाथा॥ (5-1)
"बार बार रघुबीर सँभारी। तरकेउ पवनतनय बल भारी॥ (5-1)
[illegible] 1575
[illegible]

"परेउ सुबुद्धि मोहि लागत सायक। सुमिरत राम रघुकुल नायक॥ (6-54)

युवराज अंगद — रावण की सभा में प्रवेश के पूर्व एवं सभा में बैठने के पूर्व; मेघनाद से युद्ध के पूर्व, एवं अपने दल पर विपत्ति के समय भी प्रभु का स्मरण करते हैं।

"तब अंगद उर धरि प्रभु ताई। प्रभु प्रताप उर सहज असंका॥ (6-18)
"गयउ सभा दरबार तब सुमिरि राम पद कंज। (6-18)
"राम प्रताप सुमिरि मन बैठ सभाँ सिरु नाइ॥ (6-19)
"जुद्ध बिरुद्ध क्रुद्ध दोउ बंदर। राम प्रताप सुमिरि उर अंतर॥ (6-53)
"रामचरन सरोरुह चलि भयो। सुमिरि कृपासिंधु हृदय निज॥ (6-72)

काकभुसुंडी — लोमश ऋषि के शाप के कारण जब काकभुसुंडी लोमश मुनि को प्रणाम कर भी राम का स्मरण करते हुए उड़ गये, फिर उन्हीं मुनि के आशीर्वाद स्वरूप उनके अन्तःकरण में अविद्या नहीं रहती है, और प्रभु के गुणों का स्मरण कर प्रसन्न होते हैं —

"सुमिरि राम रघुबंस मनि हरषित चलेउँ उड़ाइ। (7-113)
"जेहि आश्रम तुम्ह बसब पुनि सुमिरत श्रीभगवंत।
ब्यापिहि तहँ न अबिद्या जोजन एक प्रजंत॥ (7-113)
"सुमिरि राम के गुन गन नाना। पुनि पुनि हरष भुसुंडि सुजाना॥ (7-114)

(1576)

जगदंबा सीता जी - प्रभु बाग में आते हैं सुन कर नारद के वचनों का स्मरण करके प्रेम मग्न हो जाती हैं। बरात के पहुँचने के समय सब सिद्धियों को बुलाती हैं; अशोक वाटिका में प्रभु की छवि का स्मरण करती हैं; अग्नि-परीक्षा के समय प्रभु का स्मरण कर अग्नि में प्रवेश करती हैं —

"सुमिरि सीय नारद बचन उपजी प्रीति पुनीत।" (१-२२९)

"हृदयँ सुमिरि सब सिद्धि बोलाईं। भूप पहुनईं करन पठाईं॥" (१-३०६)

"निज पद नयन दिएँ मन राम पद कमल लीन।" (५-८)

"तृन धरि ओट कहति बैदेही। सुमिरि अवधपति परम सनेही॥" (५-९)

"राम सुभाउ सुमिरि बैदेही। उपजी बिरह बिथा अति तेही॥" (६-१०७)

"तापर हरषि चढ़ी बैदेही। सुमिरि राम सुखधाम सनेही॥" (६-१०८)

"श्रीखंड सम पावक प्रबेस कियो सुमिरि प्रभु मैथिली।" (६-१०८)

अशोक वाटिका में स्मरण करते अपने शरीर की सुध-बुध भी नहीं रहती है इसलिये तुलसीदासजी ने उपरोक्त तीनों प्रसंगों में इनके लिये 'बैदेही' शब्द का प्रयोग करते हैं।

"[illegible] हरि नाम दीन्ह पठाई॥" (५-२९) "राम राम हा राम पुकारी।" (६-५)

महाराज दशरथ — बारात यात्रा के समय स्मरण करते हैं; जनकपुर से अयोध्या के लिये प्रस्थान करते समय एवं अयोध्या प्रवेश के समय स्मरण करते हैं; सपथ करने के पूर्व श्रीराम का स्मरण करते हैं; राम वन गमन के प्रसंग में आशुतोष शंकर का स्मरण करते हैं, लौटने पर सुमंत के मुख से समाचार सुन कर राम के रूप गुण शील स्मरण कर दुखी होते हैं, और श्रीराम का स्मरण करते करते देहत्याग करते हैं—

"प्रात चले हृदयँ हरषि सुमिरि हरगुर गौरि गनेसु॥" (१-३०१)
"सुमिरि रामु गुर आयसु पाई। चले महीपति संख बजाई॥ (१-३०२)
"सुमिरि गजाननु कीन्ह पयाना। मंगल मूल सगुन भए नाना॥ (१-३३९)
सुमिरि संभु गिरिजा गनराजा। मुदित महीपति सहित समाजा॥ (१-३४४)
"करहिं गे बिश्राम तहँ राम-चरन चितु लाइ॥ (१-३५५)
"सुमिरि महेसहि कहइ निहोरी। बिनती सुनहु सदासिव मोरी॥ (२-४४)
"राम रूप गुन सील सुभाऊ। सुमिरि सुमिरि उर सोचत राऊ॥ (२-१४९)
"राम राम कहि राम कहि राम राम कहि राम।
तनु परिहरि रघुबर बिरहँ राउ गयउ सुरधाम॥ (२-१५५)

युद्ध अरु लंका वासी प्रभु में द्वारा स्मरण को देना उदाहरण—

मारीच—

"लछिमन कर प्रथमहिं लै नामा। पाछें सुमिरेसि मन महुँ रामा।
प्रान तजत प्रगटेसि निज देहा। सुमिरेसि रामु समेत सनेहा॥" (3-28)

कुम्भकर्ण—

"राम रूप गुन सुमिरत मगन भयउ छन एक।" (6-63)

विभीषण—नींद टूटने पर श्रीराम का ध्यान करते हुए जागते हैं; हनुमान जी ने श्रीराम का स्मरण करके ऐसे द्वारा सम्बोधित करते हैं—

"राम राम तेहिं सुमिरन कीन्हा। हृदयँ हरष कपि सज्जन चीन्हा।" (5-6)

नवकपीस रिच्छेस बिभीषन। सुमिरि हृदयँ दिनकर कुल भूषन। (6-39)

महर्षि वाल्मीकि शयन करने के पहले एवं नींद टूटने पर जागते ही प्रभु का स्मरण करने वालों के हृदय में प्रभु का वास बतलाते हैं जागत सोवत सरन तुम्हारी॥ (2-130) इस प्रकार उदाहरण उपदेश उद्धृत हैं। दशरथ के प्राण विलीन पाये जाते हैं। दशरथ सोने के पहले स्मरण करते हैं श्रीराम विरह में तड़प कर देह त्यागते हैं

Pg. 1578A

<u>माहात्म्य</u> – अध्यात्म रामायण से

राज, रत्न, रमणी, धन, पुत्रादि के
प्रलय ... नाश में पड़ते ही मुझे भय उत्पन्न
होता है अतः मैं भोग से भयभीत होकर
'रामचन्द्र' का ही ध्यान करता रहता हूँ।(22)
जिस समय मैं निद्रा के वशीभूत होकर
सोता हूँ उस समय मन ही मन रामचन्द्र का
स्मरण करता हूँ।(23) निद्रा टूटने पर
जागता हूँ तब भी स्वप्न में देखे हुए
रघुनाथ जी को नहीं भूलता।(24)
उपरोक्त स्तुति स्मरण का पुण्यफल
उसको मिलता है उसके शरीर से निकला
हुआ तेज श्री राम में ही समा गया
(अध्यात्म रा. उ. सर्ग 6 श्लोक 28)
श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा यदि यह माहात्म्य ... में
अवश्य इसे मानेगा (अ. रा. उ. सर्ग 5 श्लो. 60)

(1579)

विभीषण प्रभु का स्मरण करते हुए जागते हैं वह सीता जी को अशोकवाटिका में रखे जाने के गुप्त भेद को पवनसुत को बताकर प्रभु की सेवा करते हैं ।।

श्रीरामचरितमानस में तुलसीदासजी ने विभिन्न पात्रों के माध्यम से स्मरण के महत्व का वर्णन किया है सो तो प्रत्यक्ष देखा जाता है। व्यावहारिक दृष्टि से आइये उनके आचरण एवं उपदेशों पर दृष्टिपात कर लिया जाय —

"श्री गुर पद नख मनि गन जोती। सुमिरत दिब्य दृष्टि हियँ होती॥ (१-१)
"साधु असाधु सदन सुक सारीं। सुमिरहिं राम देहिं गनि तारीं॥ २-६
"प्रभु सुजस संगति भनिति भलि होइहि सुजन मन भावनी।
भव अंग भूति मसान की सुमिरत सुहावनि पावनी॥ (१-१०)
"भगति हेतु बिधि भवन बिहाई। सुमिरत सारद आवति धाई॥ (१-११)
"सुमिरि सिवा सिव पाइ पसाऊ। बरनउँ रामचरित चित चाऊ॥ (१-१५)
"सुमिरत सुलभ सुखद सब काहू। लोक लाहु परलोक निबाहू॥
कहत सुनत सुमिरत सुठि नीके। राम लखन सम प्रिय तुलसी के॥ (१-२०)
"सुमिरिअ नाम रूप बिनु देखें। आवत हृदयँ सनेह बिसेषें॥ १-२१
"अब सोइ कहउँ प्रसंग सब सुमिरि उमा बृषकेतु॥ १-३५
"सुमिरि भवानी संकरहि कह कबि कथा सुहाइ॥ १-४३

1580

"सुमिरत जाहि मिटइ अग्याना। सोइ सरबग्य रामु भगवाना॥ १-५८

"तदपि जथाश्रुत कहउँ बखानी। सुमिरि गिरापति प्रभु धनुपानी॥ १-१०५

"सेवक सुमिरत नामु सप्रीती। बिनु श्रम प्रबल मोह दलु जीती॥ १-२५

"नाम कामतरु काल कराला। सुमिरत समन सकल जग जाला॥ १-२६

"सुमिरि सो नाम राम गुन गाथा। करउँ नाइ रघुनाथहि माथा॥ १-२८

"सुमिरत जाहि मिटइ श्रम भारू। तेहि श्रम यह लौकिक ब्यवहारू॥ २-८६

"एहि बिधि आइ बिलोकी बेनी। सुमिरत सकल सुमंगल देनी॥ २-१०६

"सुमिरत रामहि तजहिं जन तृन सम बिषय बिलासु। २-१४०

"सुमिरत भरतहि प्रेमु राम को। जेहि न सुलभु तेहि सरिस बाम को॥ २-३०४

"रामाकार भए तिन्ह के मन। मुक्त भए छूटे भव बंधन॥ ६-११४

"रामहि सुमिरिअ गाइअ रामहि। संतत सुनिअ राम गुन ग्रामहि॥ ७-१३०

अच्छा तो, एक प्रभु श्रीराम का नाम स्मरण कर विश्राम किया जाय

॥ श्री राम जय राम जय जय राम ॥

सं.ले.सं.: 51

15/1/83

धर्म

धर्म का अर्थ एवं तरीके बहुत हैं। प्रभु श्री राघवेन्द्र सरकार के श्री मुख के कुछ वचन इसलिए प्रमाण देना ठीक है -

"परहित सरिस धर्म नहीं भाई। परपीड़ा सम नहिं अधमाई॥"

"सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमंत। (4-3)
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत॥" (4-3)

"सब माया संभव संसारा। जीव चराचर विविध प्रकारा॥" (7-86)

प्रभु श्री पथ विश्व रूप हैं यानि सभी जीवों में उनका वास है अर्थात सारा चराचर उनमें बसता है। किसी भी विपत्तिग्रस्त, अभावग्रस्त, एवं बिमार आदि की भलाई यानि सेवा उचित स्वरूप प्रभु की सेवा यानि असली पूजा है।

प्रायः देखा जाता है धार्मिक प्रकृति के पुरुष "त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पयेत" मंत्र का उच्चारण कर भोजन सामग्री प्रभु को अर्पित कर प्रसाद रूप में स्वयं उसको खाते हैं। उक्त मंत्र है बहुत उत्कृष्ट है जिसका अर्थ बहुत व्यापक है सभी चीजों पर लागू पड़ता है। इससे सिर्फ

भोजन सामग्री को नहीं निष्फल करना चाहिये। इस वस्तु को एवं मूल पुरुषों को प्रसन्न प्रदर्शित करना [illegible] जाय।

आर्थिक शक्ति, शारीरिक शक्ति, सबल व बौद्धिक विकास, सफल चिकित्सा, परिवार पालन आवास आदि जितनी प्रकार की शक्तियें मनुष्य को प्राप्त हैं सबों का उद्गम स्थल तो प्रभु ही है उनकी कृपा से ही प्राप्त हैं उन्हीं की देन है इसलिए मानव का कर्तव्य यही होना चाहिये कि प्रभु इस शक्ति को देवें न देकर किसी दूसरे कोई से वे समझने को यह उसकी कृपा ही है कि उन्होंने दी है जितनी मात्रा में देना उचित समझा है दी। और इसलिए का स्वामी भी प्रभु ही हैं अतः ईश्वर पर छोड़ा जाना है अतः [illegible] उस के किसी जीव की सेवा में अर्पण करना है उसको देने का ही। अलग से अलग भाव [illegible] ही प्रसाद रूप में [illegible] उपभोग करने का हम को अधिकार है। जिससे अवसर के किसी की सहायता करेंगे द्वारा बनेगी उसके ही। जहाँ तक इसका [illegible] किया है। एवं उस की भलाई होगी, और उसी हद तक ही हम प्रभु की वफादारी किया रहे हैं।

निष्काम सेवा ही यथार्थ सेवा है। बिना मूल्य चुकाए की भावना की सेवा ही धर्म में रहती है मूल्य लेने से वह धर्म न रह कर व्यापार का रूप धारण कर लेती है।

यह सेवा तन से, धन से, वचन से, मन से की जा सकती है। विद्या दान, ज्ञान दान, चिकित्सा एवं शुश्रूषा, बुद्धि तन की सेवा; अन्न वस्त्र औषध देना आदि धन की सेवा; एवं सम्वेदना पूर्ण सान्त्वना मधुर वचनों द्वारा हित तत्व बताना, वाणी वचन की सेवा है।

यह तो सही बात है कि सब की सेवा एक व्यक्ति के द्वारा संभव नहीं; यह भी जरूरी नहीं कि व्यक्तियों की वस्तुओं की सेवा ही सेवा है। अपने सामर्थ्य के अनुसार चाहे एक की करे, अथवा पूरी न कर सकें तो, थोड़ी सी करे; उतनी ही सेवा उस व्यक्ति द्वारा प्रभु की कर रहा है वह। किंतु हाँ अपूर्ण सेवा स्वार्थ लेकर नहीं करें।

पानी बाढ़े नाव में, घर में बाढ़े दाम।
दोनों हाथ उलीचिये, यही सयानो काम।।

(1584)

कोई साधनहीन व्यक्ति साधनयुक्त को कष्ट कर किसी प्रकार उसकी सहायता कर देता है और साधनहीन व्यक्ति भी पुण्य का भागी बनता है। इसके विपरीत यदि साधनयुक्त की सहायता में बाधक बन जाता है और पर पीड़क की श्रेणी में प्रवेश कर पाप का भागी बन जाता है।

श्री रामचरितमानस के वंदना प्रकरण में संत तुलसीदासजी ने भी ऐसे विहन की वन्दना की है

सीय राममय सब जग जानी।
करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी॥ (१-८)

पर पीड़क की क्या गति होती है यह विभीषण के मुख से सुना जाय—

चौदह भुवन एक पति होई। भूतद्रोह तिष्टइ नहिं सोई॥ (५-३८)

(1585)

सं.लं.से. 52

15/1/83 लंका कांड रामायण

रावण की लंका यद्यपि दुष्टों से भरी पड़ी है फिर भी इसमें अनेक धर्मप्रचारक जन भी हैं जो श्रीरामभक्त हैं। जिस प्रकार कांटों में पनपा हुआ गुलाब फूल अपनी सौरभ फैलाता है उसी प्रकार इन लोगों की भक्ति-सौरभ राम चरित मानस में तुलसीदास जी ने बताई है —

(1) मारीच — यद्यपि विश्वामित्र जी के यज्ञ को विध्वंस करने गया, किन्तु नाश करने की इसे प्रभु के दर्शन मिले और इस प्रथम दर्शन प्रसंग से यह राम भक्त बन गया। विश्व के एक परम पुरुष हैं इसकी श्रीराम के लिये मान्यता है और यह मन [illegible] जानता है प्रभु के ही दर्शनकालात्र एवं इनके हाथों से मरने से पहले सम्मुख की सीता हरण योजना का विरोध किया है किन्तु उसके न मानने पर प्रसन्न मन से प्रभु दर्शन लोभ से कांचन मृग बनता है और हृदय में श्रीराम का ध्यान करता हुआ देह त्याग करता है।

* रावण का पहले सम्मुख में और राम [illegible] भक्ति का [illegible] करता है। (अरण्यकाण्ड दोहा 3 से 6 श्लो-22)

(1586)

"तोहि पुनि कहउँ सुनहु दससीसा। तैं करहु न चराचर ईसा॥
अरु सब कीट भृंग की नाईं। जहँ तहँ मैं देखउँ दोउ भाई॥
आहि भवन कुल कुसल बिचारी। करत न मोहिं रघुपति लाजी॥
मन क्रम हरष जनाव न तेही। जानहिं रिपुहि परम सनेही॥
अस पाछें धर धावत धरें सरासन बान।
फिरि फिरि प्रभुहि बिलोकिहउँ धन्य न मो सम आन॥
पुलकित नयन पुराए सिर नावइ। सुमिरहिं राम सनेह सनेही॥
रघुपति प्रेम तासु पहिचाना। सुनि दुर्लभ प्रीति हृदय हनुमाना।
इसकी रचना प्रभु ... (सुन्दर का. 5-6 ...)

(3) विभीषण- इनके भवन में हरि मंदिर तुलसी देखते हैं; प्रभु का ध्यान करते हुए पाते हैं; प्रभु गुणगान सुनते समय पुलकित तन प्रेम में मग्न हो जाते हैं; सीता जी को रघुवीर के नाम से पहचान कर रहते हैं और पवनसुत को मार डालने का ... देते हैं नीति वचन ... कहकर ... प्रदेश के ... सीता को लौटा देने को ... समझाते हैं;
"हरि मंदिर तहँ भिन्न बनावा॥" (5-5) "राम राम तेहिं सुमिरन कीन्हा।" (5-6)
"सुनत जुगल तन पुलक मन मगन सुमिरि गुन ग्राम॥" (5-6)
"जुगुति बिभीषन सकल सुनाई।" (5-8) "नीति बिरोध न मारिअ दूता।" (5-24)

रावण द्वारा लात मारने पर प्रभु की तरफ आते समय इनकी
भावना ही इनके हृदय का राम-प्रेम बताती है; एवं
प्रभु से मिलन उपरान्त परिचय स्वरूप के कथन इनका
हृदय निष्कपट होना बताता है —

चलेउ हरषि रघुनायक पाहीं। करत मनोरथ बहु मन माहीं॥
देखिहउँ जाइ चरन जलजाता। अरुन मृदुल सेवक सुखदाता॥
जे पद परसि तरी रिषिनारी। दंडक कानन पावनकारी॥
जे पद जनकसुताँ उर लाए। कपट कुरंग संग धर धाए॥
हर उर सर सरोज पद जेई। अहोभाग्य मैं देखिहउँ तेई॥
जिन्ह पायन्ह के पादुकन्हि भरतु रहे मन लाइ।
ते पद आजु बिलोकिहउँ इन्ह नयनन्हि अब जाइ॥ (5-42)
नाथ दसानन कर मैं भ्राता। निसिचर बंस जनम सुरत्राता॥
सहज पापप्रिय तामस देहा। जथा उलूकहि तम पर नेहा॥ (5-45)

पवनसुत द्वारा लंका दहन में सारी लंका जल जाती
है परन्तु भक्त विभीषण जी का भवन नहीं जलता —
जारा नगरु निमिष एक माहीं। एक बिभीषन कर गृह नाहीं॥ (5-26)
~~रावण~~ अपना और लंकेश कहते हुए प्रभु ने इनको
श्रेष्ठ भक्त होने का प्रमाणपत्र सा प्रदान कर दिया है
ऐसे ही हैं ये यहाँ —

कहु लंकेस सहित परिवारा। कुसल कुठाहर बास तुम्हारा॥

"खल मंडली बसहु दिनु राती। सखा धरम निबहइ केहि भाँती॥
"तुम्ह सारिखे संत प्रिय मोरें। धरउँ देह नहिं आन निहोरें॥ (५-४८)
"सुनु लंकेस सकल गुन तोरें। तातें तुम्ह अतिसय प्रिय मोरें॥" (५-४९)

(3) शुक सारण - ये एक मुनि थे जो अगस्त्य जी के शाप के कारण राक्षस हो गये थे। विभीषण के पीछे गुप्तचर बनाकर रावण ने इन्हें रामदल में भेजा था। लौट कर इसने भी सीताजी को लौटा देने की सलाह रावण को दी थी। इसका नाम इसको भी लात मारकर रावण ने निकाल दिया।

"प्रगट बखानहिं राम सुभाऊ। अति सप्रेम गा बिसरि दुराऊ॥" (५-५२)
"जब तेहिं कहा देन बैदेही। चरन प्रहार कीन्ह सठ तेही॥
"मुनि अगस्ति कीं साप भवानी। राछस भयउ रहा मुनि ग्यानी॥
बंदि राम पद बारहिं बारा। मुनि निज आश्रम कहुँ पगु धारा॥" (५-५६)

(४) माल्यवंत - यह रावण का नाना और अतिवृद्ध मंत्री था। इसने भी सीता लौटा देने की सलाह रावण को दो बार दी थी। यह श्रीराम के अवतारी स्वरूप को जानता था।
"माल्यवंत अति सचिव सयाना। तासु बचन सुनि अति सुख माना॥
तात अनुज तव नीति बिभूषन। सो उर धरहु जो कहत बिभीषन॥" (५-४०)

"माल्यवंत अति जरठ निसाचर। रावन मातु पिता मंत्री बर॥
हिरन्याच्छ भ्राता सहित मधु कैटभ बलवान।
जेहि मारे सोइ अवतरेउ कृपासिंधु भगवान॥"
६-४८
परिहरि बयरु देहु बैदेही। भजहु कृपानिधि परम सनेही॥
६-४८

(५) कालनेमि - रावण को श्री राम का भजन करने की सलाह देता है। जब रावण प्रति क्रुद्ध होता है तब पवनसुत के हाथों मरना श्रेयस्कर समझ कर रावण के आदेशानुसार का पालन करके चल पड़ा और हनुमान जी द्वारा मारे जाने से पहले राम राम कहते हुए देह त्याग किया। भागवत में वर्णित है कि पहले जन्म में कंस बन कर श्री कृष्ण के हाथों मारा गया। -
"भजि रघुपति करु हित आपना। छाँड़हु नाथ मृषा जल्पना॥
नील कंज तनु सुंदर स्यामा। हृदयँ राखु लोचनाभिरामा॥
राम [illegible] यह खल [illegible]॥"
"राम राम कहि छाड़ेसि प्राना।" (६-५८)

(६) सुषेण - लक्ष्मण के शक्ति लगने पर जब इनको चिकित्सा करने के लिये बुलाया गया तब आते ही प्रभु के श्री चरणों में प्रणाम करते हैं और औषधि का भेद बताते हैं - "राम पदारबिंद सिर नायउ आइ सुषेन।
कहा नाम गिरि औषधी जाहु पवनसुत लेन॥"
६-५५

(6) कुम्भकर्ण— रावण द्वारा जगाये जाने पर रावण की भर्त्सना करते समय सीताजी के लिये जगदम्बा शब्द का प्रयोग करता है। और उनको भजन करने की शिक्षा देता है। नारद के किसी समय इसे ज्ञान दिया था। प्रभु का स्मरण कर कर प्रेम मग्न हो जाता है। इस भक्ति के कारण विभीषण की भूरि भूरि प्रशंसा करता है। और रणभूमि में राम द्वारा मारा जाकर इसकी ज्योति प्रभु में समा जाती है।

"जगदम्बा हरि आनि अब सठ चाहत कल्यान।।" (6-62)
"भल न कीन्ह तैं निसिचर नाहा। भजहु राम होइहि कल्याना।।"
नारद मुनि मोहि ग्यान जो कहा। कहतेउँ तोहि समय निरबहा।।
स्याम गात सरसीरुह लोचन। देखौं जाइ ताप त्रय मोचन।।
राम रूप गुन सुमिरत मगन भयउ छन एक।" (6-63)
"धन्य धन्य तैं धन्य बिभीषन। भयहु तात निसिचर कुल भूषन।।
बंधु बंस तैं कीन्ह उजागर। भजेहु राम सोभा सुख सागर।।
बचन कर्म मन कपट तजि भजेहु राम रनधीर" (6-64)
"तासु तेज प्रभु बदन समाना।" (6-71)

(३) त्रिजटा — जैसा पिता तैसी ही विभीषण की पुत्री प्रवृत्ति। इसकी राम भक्ति इतनी प्रबल थी कि स्वप्न में प्रभु ने भविष्य की सारी घटनाओं की जानकारी करा दी थी जिसका वर्णन करके इसने सीताजी को त्रास देनेवाली सभी राक्षसनियों को डरा कर त्रास देना बन्द किया। उस विपत्ति काल में सीताजी की यही एक मात्र संगिनी थी जब जब सीताजी विरह व्याकुल होतीं यह सांत्वना देती —

"सबन्हौ बोलि सुनाएसि सपना। सीतहि सेइ करहु हित अपना।
तासु बचन सुनि ते सब डरीं। जनक सुता कै चरनन्हि परीं॥"
"त्रिजटा सन बोली कर जोरी। मातु बिपति संगिनि तैं मोरी॥
निसि न अनल मिल सुनु सुकुमारी। अस कहि सो निज भवन सिधारी॥ (५-१२)
कह त्रिजटा सुनु राजकुमारी। उर सर लागत मरइ सुरारी॥
प्रभु ताते उर हतइ न तेही। एहि के हृदयँ बसति बैदेही॥
(६-९९)

(४) मन्दोदरी — यह अनेक बार में सीताजी पर प्रहार करने से रावन को रोकती है; पवनसुत द्वारा लंका दहन के बाद, प्रभु द्वारा सेतु बाँध कर लंका पहुँचने पर, प्रभु के सर से इसके कुण्डलों के जमीन पर गिर पड़ने पर, एवं अंगद द्वारा रावन का मुकुट प्रहार होने के बाद इस प्रकार

(1586)

"[illegible] पुनि कहहु सकल [illegible] तौ [illegible] चराचर ईसा॥
अरु [illegible] कीट भृंग की नाईं। जहँ तहँ मैं देखउँ दोउ भाई॥
जाहि भजत कुल कुशल बिचारी। [illegible] रघुपति [illegible]॥
मन क्रम [illegible] न तेही। [illegible] जिन्हहि परम सनेही॥
अस [illegible] धरि धावत चले [illegible]।
फिरि फिरि प्रभुहि बिलोकिहहिं चलत न [illegible]॥
पुलकित जल प्रभु [illegible]। [illegible] मन [illegible]॥ (३-३६)
रघुपति प्रेम तासु पहिचाना। मुनि दुर्लभ गति दीन्हि सुजाना।
इसको लेकर प्रभु [illegible] (तुलसी [illegible] २० [illegible]) (३-२७)

③ विभीषण — इन्होंने भवन में हरि मंदिर बनवा रखा है; प्रभु का नाम लेते हुए जागते हैं; प्रभु गुणगान करते समय पुलकित एवं प्रेम में मग्न हो जाते हैं; सीता जी को अशोक वाटिका में रखा गया है यह रूप और पता हनुमान को बताकर प्रभु के काम में सहायक हुए हैं; और रावण जब हनुमान को मार डालने का आदेश देता है तब नीति वचन एवं तर्क कहकर उस आदेश को रुकवाते हैं; सीता को लौटा देने को रावण को बार बार समझाते हैं;

"हरि मंदिर तहँ भिन्न बनावा॥" (५-५) "राम राम तेहिं सुमिरन कीन्हा।" (५-६)
"सुनत जुगल तन पुलक मन मगन सुमिरि गुन ग्राम॥" (५-६)
"जुगुति बिभीषन सकल सुनाई।" (५-८) "नीति बिरोध न मारिअ दूता।" (५-२४)

रोम राजि अष्टादस भारा। अस्थि सैल सरिता नस जारा॥
उदर उदधि अधगो जातना। जगमय प्रभु का बहु कलपना॥
अहंकार सिव बुद्धि अज मन ससि चित्त महान।
मनुज बास सचराचर रूप राम भगवान॥ (६-१५)
"पति रघुपतिहि नृपति जनि मानहु। अग जग नाथ अतुल बल जानहु॥"
"अहह कंत कृत राम बिरोधा। काल बिबस मन उपज न बोधा॥ (६-३६)
"आन्यो मनुज करि दनुज कानन दहन पावक हरि स्वयं। (६-३७)
जेहि नमत सिव ब्रह्मादि सुर पिय भजेहु नहिं करुनामयं॥
अहह नाथ रघुनाथ सम कृपासिंधु नहिं आन।
जोगि बृंद दुर्लभ गति तोहि दीन्हि भगवान॥ (६-१०४)

(10) मेघनाद - यह पितृभक्त था रावण के आदेश का कभी उल्लंघन नहीं किया। यह बड़ा भगवद्भक्त था। लक्ष्मण के हाथ मरते समय राम और लक्ष्मण दोनों का स्मरण करते हुए प्राण छोड़ता है तब हनुमान और अंगद ने धन्य धन्य कहा है।

"रामानुज कहँ रामु कहँ अस कहि छाँड़ेसि प्रान।
धन्य धन्य तव जननी कह अंगद हनुमान॥"
(६-७६)

(१५९४)

(११) रावण - यह वैरी भाव का भक्त था अपनी भक्ति को हृदय में गुप्त रखे हुए था। विभीषण के महल में मन्दिर बना हुआ था यह बात इसीलिये तो नहीं थी किन्तु इसका इसने कभी प्रकाशित होने उल्लेख तो कहीं नहीं किया। सीता हरण करने के पहले उन्हें प्रणाम करता है राम के हाथ मरते समय राम का नाम उच्चारण करता है। इसकी ज्योति प्रभु मुख में समा जाती है।—

मन महुँ चरन बंदि सुख माना॥(३-२८)
कहाँ राम रन हतौं पचारी॥(६-१०३)

सीताकी खोज करने में मातृबुद्धि से इसका भाव है (सुन्दरकाण्ड ९-३)

(१२) तरणीसेन - कृत्तिवास रचित बंगला रामायण में वर्णित है यह विभीषण का पुत्र थे जैसा बाप वैसा बेटा इसका राम नाम का जप इतना ज्यादा था कि जब भी राम से युद्ध करने पहुँचा उस समय इसके रोम रोम से राम राम निकल रहा था। विभीषण ने प्रभु से कह कर प्रभु के हाथ से इसका वध कराया है ताकि इसकी मुक्ति हो जाय।

इन लोगों के अनन्य आचरण अप्रमाण ही अप्राप्ति जनक एवं समाज विरोधी रहे हैं अनुकरण के योग्य कदापि नहीं हैं किन्तु इनकी धीरता-भक्ति आदर्श एवं अनुकरणीय अनन्य हैं और पुनि भक्ति के प्रसंग में ही प्रस्तुत लेख है कदाचित गुण अवगुण दोनों का सम्मिश्रण तो हर जगह होता ही है अवगुण को त्याग कर गुण को ग्रहण करना ही बुद्धिमत्ता है। इसी प्रकरण में तुलसीदास ने कहा है

"जड़ चेतन गुन दोषमय बिस्व कीन्ह करतार।
संत हंस गुन गहहिं पय परिहरि बारि बिकार॥ 1-6

अरण्य काण्ड में अत्रि मुनि

"कलिमल समन दमन मन राम सुजस सुखमूल।
सादर सुनहिं जे तिन्ह पर राम रहहिं अनुकूल॥
कठिन काल मल कोस धर्म न ग्यान न जोग जप।
परिहरि सकल भरोस रामहि भजहिं ते चतुर नर॥" 3-6
भगति हीन नर सोहइ कैसा। बिनु जल बारिद देखिअ जैसा॥
(3-35)

(1596)

सं. ले. सं. 53

25/11/83 **श्रीकृष्ण के तामसिक गुण**

मथुरा से प्रकाशित श्री कृष्ण जन्म स्थान स्मारिका में उल्लिखित हनुमान प्रसाद जी पोद्दार के अनुसार (१९७५) से उद्धृत —

श्री कृष्ण के अनन्त सद्गुण हैं उनका वर्णन कौन कर सकता है। पर जब वे पूर्ण मानव हैं, पूर्ण भगवान हैं तब उनमें तामसी कहे जाने वाले भावों का भी समावेश होना चाहिये। वे स्वयं ही कहते हैं — "जितने सात्त्विक, राजस, तामस भाव हैं सब मुझसे ही होते हैं — ऐसा जानो"। मूलतः भाव तो प्रकृति में हैं ही। तामस भावों में काम, क्रोध, लोभ, मोह, चोरी, परपीड़न, हिंसा, अभिमान आदि माने जाते हैं।

(1) श्री कृष्ण में भी काम है — वे अपने भक्तों की प्रेमियों की सदिच्छा पूर्ण करने की सदा कामना करते हैं।

(2) बाल लीला में कोप से उत्पात होने पर

मान कर क्रोध करते हैं तथा दही का मटका फोड़ डालते हैं। प्रभु ऐं पर क्रोध कर के बंधन के द्वारा उनका उद्धार करते हैं - यही क्रोध है।

(3) दूध का स्तन पान करने से कभी अघाते ही नहीं, और प्रेमीजनों को सुख देने से कभी तृप्त होते ही नहीं - यह लोभ है।

(4) माता की छड़ी तथा लाल आँखें देख कर भयभीत हो आँखों से आँसू भर लेते हैं और भाग छूटते हैं - यह भय है।

(5) अपनी जादूभरी तिरछी नजर से देख कर और मुरली-ध्वनि सुनाकर सबके चित्त को नित्य चुराते रहते हैं। गोपियों के मन में जब उन्हें माखन खिलाने की और कृष्ण का मुँह चोरी से चूम जाँय, और इन्हें छुप कर उनकी यह लीला देखती रहें यह इच्छा उत्पन्न होती है तब उनकी इच्छापूर्ति के लिये अन्तर्यामी प्रभु उनके घर में माखन चुरा कर खाते हैं यह उनकी चोरी है।

(6) प्रेमियों को दीर्घ काल तक हरि की विरह यातना का सुख देते रहना यह परपीड़न है।

(6) प्रेमरस की वृद्धि के लिये बाकू घर उनका सिद्धान्त है। जिसे स्वरूपतः कुछ भी नहीं। जानने वाले होने के कारण मैं वा से कहना मैं ने मिटटी नहीं 'बाकी' पद की उनका निश्चय आग्रह है।

आँखि देखि चाहत नहीं, कछु देखन मन और।
बसै सदा मेरे दृगन, सोई नंद-किसोर॥
तन मन सब लिपटे रहैं नित प्रियतम के अंग।
भुक्ति मुक्ति की कल्पना करै न यह सुख संग॥

भूलि जाय सुधि जगत की भूलै घर की बात।
हिय सौं हिय लाग्यौ रहै बिनु बाधा दिन रात॥
इन्द्रिय मन बुद्धि आत्मा बने स्याम के धाम।
सब में सदा बसे रहें प्रियतम मधुर ललाम॥

(1599)

सं॰ सं॰ 54

31/1/83 राम-भक्त महात्मा बालि

सृष्टिकर्ता ब्रह्मा के अश्रुओं से ऋक्षराज बंदर उत्पन्न हुआ। एक बार जल में उसने अपनी छाया देखकर उसमें कूद पड़ा। और पानी में गिरते ही वह एक सुंदर स्त्री बन गया। इन्द्र और सूर्य उसपर मोहित हो गये। इन्द्र का वीर्य उस स्त्री के बालों पर पड़ा। इससे बालि जैसा हुआ—बालों से उत्पन्न होने के कारण इसका नाम बालि पड़ा। सूर्य का वीर्य ग्रीवा के ऊपर पड़ने से सुग्रीव उत्पन्न हुआ। इसके बाद वह स्त्री पुरुष बन गयी। इस प्रकार उत्पन्न हुए दोनों भाई ब्रह्मा की आज्ञा से किष्किंधा में राज्य करने लगे।

बालि महाबली था। प्रतिदिन समुद्र से पूर्व तक, पश्चिम, उत्तर समुद्र से दक्षिण समुद्र तक सूर्योदय के पहले ही विराट परिक्रमा कर आता और संध्योपासना, बड़े बड़े पर्वतों को उखाड़ कर ऊपर फेंकता था और फिर लोक लेता था। (वाल्मीकि रा॰ किष्कि॰) एक बार रावण इसे जीतने आया। उस समय बालि संध्या-तर्पण कर रहा था। किसी प्रकार से उसने रावण को बगल में दबा

(1600)

लिया एवं छः मास तक दबाये रखा। अन्त में उसने इस तरह दबाये दबाये नित्य चारों समुद्रों का सन्ध्या-वन्दन करता रहा। एक बार बालि जब गया तब रावण उसके बगल में दबा है बालि ने हाथ उठा कर रावण फेंकना चाहा किंतु झपट कर बालि ने फिर उसे पकड़ लिया फिर कश्यप मुनि के अनुरोध पर रावण को छुटकारा हुआ।

मय के नाम के दैत्य के दो पुत्र मायावी और दुंदुभी थे। दुंदुभी का भैंस जैसे का आकार दस हजार हाथियों का बल था। वह किष्किंधा पुरी आकर गर्जने और सींगों से नगर द्वार को तोड़ने की चेष्टा बालि को ललकारा। बालि ने मारकर उसके शव को एक योजन दूर फेंक दिया। उस शव के शरीर निकली रक्त की बूंदें हवा से मतंग ऋषि के आश्रम में जा पड़ीं तब मतंग ने शाप दिया कि जिसने इस शव को फेंका है वह यदि आश्रम के आसपास एक योजन तक आयेगा तो उसके सिर के सैकड़ों टुकड़े हो जायेंगे एवं बालि के पक्ष वाले वानर यहाँ दिखाई पड़ेंगे वे पाषाण हो जायेंगे।

दुन्दुभी के मारे जाने का बदला लेने उसका
भाई मायावी युद्ध करने आया उसे पीछे
बालि और सुग्रीव दोनों दौड़े तब उसने
सोचा कि वानर भाइयों से मैदान में नहीं
जीत सकूंगा अतः वह एक गुफा में घुस गया।
बालि ने सोचा कहीं ऐसा न हो कि गुफा के
बाहर आसपास छिपे हों और हम दोनों भाई
जब घुस जायें तब वह बाहर निकल पीछे
से घात कर दे अतः गुफा के द्वार पर सुग्रीव
को द्वार रक्षा के लिये छोड़कर बालि गुफा
में अकेले ही घुस गया। उसने अंदाज किया
था कि एक पखवाड़े में मायावी को मारकर
लौट आऊंगा किन्तु छः तो एक महीना लगा जिस
मायावी को मारने पर उसके खून की धारा
गुफा के बाहर निकली तब सुग्रीव ने
विचार किया कि शायद बालि मारा गया
और यह खून उसी का है उस हालत में
वह मायावी बाहर निकल कर मुझे भी मार
देगा अतः एक बहुत बड़ी चट्टान से गुफा
का द्वार बंद कर किष्किन्धा लौट आया

(1602)

सकता। किन्तु न वह (बालि) आ ही नहीं सके। गुफा के
द्वार पर बैठे सुग्रीव को राक्षसों की गर्जन तो सुन
पड़ती थी पर बालि का एक भी शब्द सुनाई न
पड़ता था इससे उसे शंका हुई कि शायद
बालि मारा गया।

मय सुत मायावी तेहि नाऊँ। आवा सो प्रभु हमरें गाऊँ॥
धावा बालि देखि सो भागा। मैं पुनि गयउँ बंधु सँग लागा॥
गिरिबर गुहाँ पैठ सो जाई। तब बालीं मोहि कहा बुझाई॥
परिखेसु मोहि एक पखवारा। नहिं आवौं तब जानेसु मारा॥
मास दिवस ~~[illegible]~~ तहँ रहेउँ खरारी। निसरी रुधिर धार तहँ भारी॥
बालि हतेसि मोहि मारिहि आई। सिला देइ तहँ चलेउँ पराई॥

उधर राजा से शून्य है यह देखकर कहीं शत्रु
आक्रमण न करदे ऐसा विचार कर मंत्रियों ने सुग्रीव
को बलात् राजा बना दिया। इधर कपट होने से लौटने
पर गुफा के द्वार [illegible] पत्थर से बन्द देख कर
उसे सुग्रीव पर बड़ा रोष कर बालि प्रत्यंत क्रुद्ध
हो गया। एक तो गुफा में अंधकार के कारण दिन
रात का पता ही नहीं चलता था दूसरे युद्ध में
लगे रहने के कारण उसे अन्य बातों का ध्यान ही
नहीं रहा। ऊपर से क्रोध भराकर हावी हो गया

और सुग्रीव को निश्चय पर उसे संदेह हो गया। नगर में
आ गया। उसने सुग्रीव की स्त्री और सम्पत्ति छीन कर
राज्य से भगा दिया और मारने के लिये पीछा किया।
ऋषि मुनि के शाप के कारण सुग्रीव ऋष्यमूक
पर्वत पर आकर अपनी रक्षा की। फिर भी भयभीत
रहता था।

"मंत्रिन्ह पुर देखा बिनु साईं। दीन्हेउ मोहि राज बरिआईं॥
बालि ताहि मारि गृह आवा। देखि मोहि जियँ भेद बढ़ावा॥
रिपु सम मोहि मारेसि अति भारी। हरि लीन्हेसि सर्बसु अरु नारी॥
ताकें भय रघुबीर कृपाला। सकल भुवन मैं फिरेउँ बिहाला॥
इहाँ साप बस आवत नाहीं। तदपि सभीत रहउँ मन माहीं॥"
(6-6)

यह है गलतफहमी एवं क्रोध का फल जिसके
कारण बालि को भ्रातृद्रोह रूपी पाप करना पड़ा
और फल स्वरूप भविष्य में जीवन से हाथ धोना
पड़ा। अथवा यह कहा जाय यह सब श्री हरि इच्छा से
भगवान की इच्छा से ही हुआ। बालि का पुत्र अंगद
को राज्य न देकर सुग्रीव को ही मंत्रियों ने राज्य दिया
बाद सुग्रीव वन में क्यों रहता था - और श्री राम के
साथ सुग्रीव की मित्रता कैसे होती। बालि वध की
सिद्धि नहीं होती और न श्री राम की सहायता क्यों करता

यहाँ तक से हुए बालि के बल का वर्णन प्रस्तुत उसकी ईश्वर भक्ति का भी दिया जाता।

जब श्री राम द्वारा भेजा गया सुग्रीव बालि द्वार पर जाकर युद्ध के लिये बालि को ललकारता है बालि की पत्नि तारा युद्ध के लिये जाने से रोकती हुई समझाती है कि उसका युद्ध के उद्देश्य से आने का कारण दर्शन की भावना का कारण है कि दुर्जय राम और लक्ष्मण से उसकी मित्रता हुई है वे काल को भी जीत सकते हैं प्राय युद्ध के लिये न जाइये किन्तु बालि को श्री राम पर पूर्ण विश्वास है यह जानता था उनके स्वरूप का भी बोध है एवं स्वभाव का भी बोध है बालि को। इसीलिये समदर्शी कहता है कहि हरि प्रभु कहेउ नाथ "परिस्थिति यह मोर कृपाला। सब पर मोहि बराबरि दाया (७-८६) सेवक प्रिय सब मम उपजाये (७-८६) को वह मानता है उसका दृढ़ विश्वास है कि उनका कोई प्रिय या अप्रिय नहीं है क्योंकि श्री राम परमात्मा हैं। फिर भी कोई कहे कि वे राजकुमार

(1505)

है तो भी हैं तो रघुकुल के राजकुमार — उस कुल के
सभी राजकुमार धर्मात्मा होते हैं। मैंने उनका
कोई अपकार ही नहीं किया फिर वे मुझे
मारने का पाप क्यों करने लगे। इतना होने
पर भी यदि श्रीराम मुझे मारते हैं तो पहली
बात तो यह है युद्ध में मृत्यु ही योद्धा की शोभा
है दूसरी बात यह है कि सुग्रीव की
शक्ति नहीं कि मुझे मार सके, यदि मारेंगे
तो रघुकुल श्रेष्ठ ही मारेंगे इस हालत में मृत्यु
के समय प्रभु के श्रीविग्रह का दर्शन पाकर परम
पद को प्राप्त कर सनाथ हो जाऊंगा क्योंकि प्रभु अपने
भक्तों के उद्धार हेतु निष्पक्ष समदर्शी भी हो जाते
हैं। "कह बाली सुनु भीरु प्रिय समदरसी रघुनाथ।
जौं कदाचि मोहि मारहिं तौ पुनि होउँ सनाथ॥" (४-७)

पत्नि को इस प्रकार समझा कर अपने बल
के मद में चूर अभिमानी बाली नगर के बाहर
आ गया है उसके घूंसों की मार सुग्रीव सहन न
सका और विकल होकर भाग छूटा। प्रभु के
सामने जाकर कहता है प्रभो यह भाई नहीं है
मेरे यह काल है। सुग्रीव जी जब अपना युद्ध

(160)

कहने का आशय है कि राम जी ने भाई का स्नेह की गाथा कही है (ऐसे)
प्रभु ने स्पर्श कर उसके शरीर वज्र के जैसा बना कर विशाल
बल देकर फिर भेजा तुरंत ही सुग्रीव की इतनी हिम्मत
देखकर बालि प्रचण्ड ही [illegible]
[illegible]
शक्ति इतनी कोई नहीं है किन्तु बिना
हिचकिचाहट के वह युद्ध के लिये आ जाता
का [illegible] प्रभु के [illegible] में प्रभु के
हाथों हार कर प्रभु ने इस स्थूल शरीर को मुक्ति
देने का मन में पक्का निश्चय कर ही रखा था
पहले सुग्रीव ने बालि को अपना [illegible] कहा था
[illegible] किन्तु को प्रभु के [illegible] अतुल बल नहीं
दिया, [illegible] प्रभु ने अतुल बल दे कर [illegible]
के [illegible] दिया फिर प्रभु ने बालि को
पीट डाला, [illegible] सुग्रीव के [illegible]
[illegible] बालि को [illegible]
[illegible] प्रभु ने [illegible] ही [illegible]
दूसरी बार वज्र [illegible] कर अतुल बल दे कर
[illegible] बालि [illegible]
[illegible] जड़ कर [illegible] बल दे [illegible]
(४-८)

बहुत देर तक सुग्रीव स्वसाहस का बल बल कर कर ~~थक~~ कर जीतने की आशा छोड़ अपनी हार निश्चित जानकर अत्यन्त भयभीत हो उसने इधर उधर देखता है जहां प्रभु छिपे खड़े देख रहे हैं। सुग्रीव के निराश होकर भय सहायता मांगने पर प्रभु ने अपने बाण का प्रयोग बालि के हृदय पर किया—जब तक जीव के हृदय में बल बल रहता है ~~[illegible]~~ तब तक प्रभु सहायता नहीं किया करते। जब पुरुषार्थ और स्वआशा भरोसा छोड़, प्रभु की शरण हो जाता है तभी प्रभु तुरंत सहायक होते हैं। प्रभु का वृक्ष की आड़ में खड़े होकर देखने के कई भाव हो सकते हैं: (1) बालि परम भक्त है प्रकट होने पर कहीं प्रभु चरण पकड़ लेता तो ~~[illegible]~~ पकड़े [क्योंकि प्रभु दर्शन से [illegible] निश्चय है] भक्त पर बाण चलाने हेतु प्रभु का हाथ ही नहीं उठ पाता। होते हालत बालि की अभिलाषा में प्रभु के सम्मुख अपने की आहुति देकर परलोक सिधारने की इच्छा अधूरी ही रह जाती। अतः उस समय मुनि ने [illegible] भी प्रभु द्वारा 'सनाथ' होने की इच्छा भी अधूरी रह जाती एवं (2) सुग्रीव के प्रति की हुई प्रभु प्रतिज्ञा भी अधूरी ही रह जाती (3) यदि

प्रगट खड़े होकर देखते हैं तो सुग्रीव के मन में
विचार उठ सकता है कि हमको लड़ा कर प्रभु
तमाशा देख रहे हैं (4) बालि को युद्ध में वरदान है कि
उसके सम्मुख जो आये शत्रु का आधा बल बालि में
चला आता और प्रभु का आधा बल धारण
करते ही सेवक की तो है ही नहीं नतीजा होता
कि वह वरदान झूठा हो जाता (5) बालि श्री राम के
स्वरूप को पहचानता है वह रावण द्वारा सीता हरण
जानने पर रावण को कान पकड़ कर प्रभु सम्मुख
उपस्थित कर कर सीता लौटवा सकते हैं अतः तो
फिर इस प्रतिज्ञा का नाश न हो सकेगा एवं देवताओं
का एवं अवतार का उद्देश्य ही विफल हो
जायगा इन सम्भावनाओं को प्रभु टाल रहे थे।

पुनि नाना बिधि भई लराई (बिटप ओट देखहिं रघुराई
(४-८)

सहायता के लिये सुग्रीव की पुकार सुन
कर प्रभु विटप ओट से ही बालि के हृदय पर अपना
अमोघ चलाया — सिर न काट कर हृदय पर बेध
के कई भाव हैं अन्तर्यामी प्रभु जानते हैं कि बालि
प्रभु को हृदय में बदलना चाहते हैं और अन्त समय
ही देखना चाहता है अतः बाण को हृदय में